

प्रकाशक—

श्रीकृष्णचन्द्र बेरी

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

पो० बक्स न० ७०

ज्ञानवापी, बनारस ।

मुद्रक—

www.PajTeacher.com

गानगन्धिर, बनारस ।

लोही लुहाय चली कृषाय,
चनकीला धात्र लाल-लाल ।

मद मत्त वीर धर उग्र रूप,
दाटी तरवारा अद्भ दाल ।

अम्बार पड़या खा-खा पद्याइ,-
ली भेंट भवानी स्यडनाल ।

—मैधराज 'मुकुल' (वर्तमान)

विषय-सूची

विषय

पृष्ठ-संख्या

पहला अध्याय—राजस्थानी भाषा का प्रारम्भिक परिचय [१-६]

- (क) विस्तार-क्षेत्र [२], (ख) राजस्थानी भाषा की सीमाएँ [३], (ग) राजस्थानी भाषा का वर्गीकरण [४], (घ) राजस्थानी भाषा का नामकरण [५] ।

दूसरा अध्याय—राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति और विकास [७-२३]

- (क) आर्य-भाषा-परिवार [७], (ख) प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा काल [७], (ग) राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति [९], (घ) प्राचीन राजस्थानी [११], (ङ) मध्यकालीन राजस्थानी [१६] (च) आधुनिक राजस्थानी [१९]

तीसरा अध्याय—राजस्थानी भाषा की विशेषताएँ [२४-३७]

- [क] उच्चारण सम्बन्धी विशेषताएँ [२६], (ख) व्याकरण सम्बन्धी विशेषताएँ [२७], (ग) शब्द-कोश सम्बन्धी विशेषताएँ [३०], (घ) लिपि सम्बन्धी विशेषताएँ [३२], (ङ) साहित्य-सम्बन्धी विशेषताएँ [३५] ।

चौथा अध्याय—राजस्थानी ही क्यों ? [३८-४४]

- (क) विशेषज्ञों के वक्तव्य [३८], (ख) पराधीनता का परिणाम [३९], (ग) जीवन-मरण का प्रश्न [४१] ।

पांचवाँ अध्याय—विरोधियों की दलीलें

[४५-५४]

(क) स्टैंडर्ड राजस्थानी [४५], (ख) राष्ट्रभाषा की स्थिति [४७], (ग) राजस्थान-मालवा की साहित्यिक भाषा [५०], (घ) अखिल भारतीय स्थिति [५१], (ङ) लिपि और सहायक पुस्तको आदि का प्रश्न [५३] ।

छठा अध्याय—राजस्थानी भाषाके लिये हमारा कर्तव्य

[५५-६१]

(क) भारतीय ससद [५५], (ख) केन्द्रीय सरकार [५५], (ग) सम्बन्धित सरकारें [५५], (घ) जननायक और हितचिन्तक [५६], (ङ) हमारे साहित्यकार [५६], (च) विद्वान्, विचारक आदि [५७], (छ) पत्रकार [५७], (ज) सम्बन्धित सस्थाएँ [५८], (झ) राजस्थानी भाषा की उन्नति के लिये प्रमुख कार्य [५८] ।

परिशिष्ट—

[६२-६७]



प्रस्तावना

यह पुस्तक आज से लगभग तीन वर्ष पूर्व तैयार हो चुकी थी, किन्तु कई कठिनाइयों से इसका प्रकाशन तत्काल नहीं किया जा सका। पुस्तक-प्रकाशन में विलम्ब होते देख मने इसके आधार पर ३० निवन्ध तैयार किये और उनको राजस्थान से सम्बन्धित प्रमुख पत्रों में प्रकाशित किया। राजस्थानी भाषा के प्रश्न को प्रायः सभी सायियो और सम्बन्धित व्यक्तियों ने बहुत महत्त्व दिया और आग्रह किया कि इस पुस्तक को अवश्य ही प्रकाशित किया जावे। इसलिये इस पुस्तक को सक्षिप्त कर नवीन रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

भारतीय स्वाधीनता और अधिकांश राजस्थान के एकीकरण पर भी राजस्थानी विद्यार्थियों को मातृभाषा राजस्थानी द्वारा शिक्षण नहीं दिया जाता है। इसलिये हमारे विद्यार्थियों को सर्वथा अज्ञानिक और अनुपयुक्त पाठ्य-पुस्तकों से परेशान होना पड़ता है। अधिकांश विद्यार्थी घबरा कर प्रारंभिक कक्षाओं में ही पढ़ना छोड़ देते हैं। मातृभाषा में शिक्षण मिलने से और मातृभाषा में उपयुक्त साहित्य प्राप्त होने से लिखना-पढ़ना सीखते ही विद्यार्थियों के लिये ज्ञान-विज्ञान के द्वार खुल जाते हैं। राजस्थानी भाषा की अमान्यता से ही राजस्थान में वर्षों के परिश्रम और करोड़ों रुपये के व्यय पर भी निरक्षरता के आँकड़े ६१.५ प्रतिशत से कम नहीं हो रहे हैं।

राज्य-कार्य में भी अब राजस्थानी कहीं देखने में नहीं आती और इस कारण हमारी जनता सर्वथा असहाय हो गई है। पग-पग पर उसे असीम कठिनाई का सामना करना पड़ता है और मातृभाषा की अमान्यता से मूलभूत नागरिक अधिकारों तक से वंचित रहना पड़ता है। यह स्थिति कब तक सह्य हो सकती है ?

राजस्थानी साहित्य से मैं बाल्यावस्था में ही प्रभावित हो चुका था । मुख्यतः महाराज चतुरसिंहजी की सरल, सरस राजस्थानी पुस्तकें मैंने बड़े चाव से पढ़ी थीं । साथ ही प्राचीन वीर रसपूर्ण और शोक साहित्य का रसास्वादन भी मैं कर चुका था । तदुपरान्त राजस्थान विश्व विद्यापीठ, शोध-संस्थान, उदयपुर के सस्थापक, मंत्री और सचालक के नाते राजस्थान में साहित्यिक-सांस्कृतिक खोज, संप्रहृ तथा सम्पादन-प्रकाशन सम्बन्धी कार्य प्रारंभ किया तो कुछ ही वर्षों में हिन्दी और संस्कृत के साथ राजस्थानी भाषा की भी पर्याप्त सामग्री एकत्रित हो गई । उसके अध्ययन से मेरी मातृभाषा सम्बन्धी गौरव-भावना जाग्रत हुई । अब राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर, जयपुर के साहित्यिक कार्यों में सलग्न रहने से इस सब में प्रेरणा प्राप्त होती है । तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो किसी भी श्राधुनिक भारतीय आर्यभाषा का प्राचीन साहित्य राजस्थानी साहित्य की समानता नहीं कर सकता । नवीन राजस्थानी साहित्य भी परम उत्कृष्ट है, किन्तु अंग्रेजी शासन-काल के प्रकाशन सम्बन्धी प्रतिबन्धों के कारण उसका समुचित विकास नहीं हो सका है ।

भारतीय स्वाधीनता के उपरान्त भारतीय सविधान बनने लगा तो मैंने सविधान सभा के कुछ सदस्यों के सामने राजस्थानी भाषा की मान्यता सम्बन्धी प्रस्ताव रखवा, किन्तु इस विषय में उनकी उदासीनता देखकर अत्यन्त दुःख हुआ । फिर भारतीय सविधान में दो करोड़ भारतीय जनता की मातृभाषा राजस्थानी को सर्वथा उपेक्षित कर दिया गया । सत्तार की किसी अन्य प्रगतिशील जनता के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता तो एक बड़ी क्रान्ति हो जाती । मातृभाषा के प्रति सम्बन्धित जनता में चेतना का अभाव, नेताओं की उदासीनता और सम्बन्धित भ्रान्तियों को देखते हुए हमें तत्काल प्रयत्नशील होना पडा । अब लिखते हुए प्रसन्नता है कि राजस्थान के प्रमुख स्थानों में और बाहर भी 'राजस्थानी' नामकी मंगल-कार्यों का सूत्रपात हो चुका है । इनका शुभ परिणाम शीघ्र ही जानने श्रावेगा ।

राजस्थानी का जन-आन्दोलन कई वर्षों से चालू है। राजस्थान के प्रमुख साहित्यकारों, विद्वानों, जन-नेताओं और कार्यकर्ताओं का इसमें पूर्ण सहयोग रहा है। किन्तु कई भ्रातियों के कारण इसमें श्रवतक सफलता नहीं मिल सकी है। मैन प्राचीन राजस्थानी, नागरी लिपि, खड़ी बोली आदि से सम्बन्धित भ्रातियों के निराकरण का प्रयत्न किया है। साथ ही आर्य-भाषा-परिवार, वेदों का निर्माण आदि के सम्बन्ध में नवीन ज्ञातव्य भी उपस्थित किये हैं। श्रवदय ही इत्त पुस्तक में प्रसङ्गवश श्रत्यन्त सक्षेप में लिखा गया है। पाठकों की सेवा में वित्तृत विवरण किसी अन्य ग्रन्थ में प्रकाशित किया जायेगा। किन्तु जितना इत्त विषय में लिखा गया है, आशा है कि भ्रातियों के निराकरण के लिये और वार वार मातृभाषा राजस्थानी को दुत्कारनेवालोंकी समझ के लिये पर्याप्त होगा।

राजस्थान और मालवा राजनैतिक दृष्टि से अलग कर दिये गये हैं। महान् मालवा का अस्तित्व ग्वालियर में लीन करने का प्रयत्न किया गया है। किन्तु दोनों प्रदेशों की जनता सांस्कृतिक दृष्टि से अभिन्न बनी हुई है। अंग्रेजी शासन के समय में दोनों के कांग्रेस और शिक्षा आदि से सम्बन्धित सगठन भी अभिन्न थे। श्रव चम्बल-सिंचाई और विजली-योजना द्वारा राजस्थान-मालवा की एकता पुनः स्थापित होनेवाली है। साथ ही यह देख कर परम सन्तोष होता है कि मालवा के साहित्यकारों में भी अपनी मातृभाषा के प्रति नवीन चेतना का प्रादुर्भाव हो चुका है। सर्वश्री सूर्यनारायण व्यास, श्याम परमार, श्रीनिवास जोशी, आनन्दराव जोशी और अन्य साहित्यकारों ने निश्चित योजना के साथ मातृभाषा-विकास सम्बन्धी कार्य प्रारम्भ कर दिये हैं। राजस्थान-मालवा के विद्वानों और साहित्यकारों को जनहित की दृष्टि से राजनैतिक अनेकता की चिन्ता किये बिना अधिक सहयोग से कार्य करने का परम प्रयत्न है।

मातृभाषा और मातृभूमि की सेवा करना राष्ट्रभाषा और राष्ट्र

के विकास के लिये परम आवश्यक है । मुझे विश्वास है कि मातृभाषा राजस्थानी का विकास राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में सहायक है । इसलिये राजस्थानी के सर्वांगीण विकास सम्बन्धी प्रयत्न सर्वथा प्रशसनीय और प्रोत्साहनीय हैं ।

अन्त में मैं अपने समस्त सहयोगियों और श्रद्धेयो का आभार मानता हूँ, जिन्होंने मुझे सदा ही प्रोत्साहन दिया है । साथ ही पुस्तक प्रकाशन में सहयोग देने और उसकी उत्तम छपाई-सफाई के लिये मैं श्रीयुत कृष्णचन्द्र जी वेरी और उनके सहयोगियों को अपने हार्दिक धन्यवाद अर्पित करता हूँ ।

जयपुर,
ता० १ मई, १९५३ ई०

—पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

राजस्थानी भाषा की रूपरेखा और मान्यता का प्रश्न

पहला अध्याय

राजस्थानी भाषा का प्रारम्भिक परिचय

हमारे भारतवर्ष जैसे सुविस्तृत देश में भूमि, भाषा और सस्कृति की दृष्टि से विभिन्नताओं का होना स्वाभाविक है। भारतवर्ष का अस्तित्व भी वास्तव में विभिन्न भारतीय भू-भागों, भाषाओं और सस्कृतियों की सम्मिलित शक्ति तथा मूल एकता पर निर्भर है। अखिल भारतीय उत्कर्ष के लिये यह परम आवश्यक है कि विभिन्न भारतीय भू-भागों, भाषाओं और सस्कृतियों का सरक्षण तथा समुचित रूप में इनका विकास किया जावे।

अधिकांश पश्चिमी भारतवर्ष के विस्तृत भाग में फैला हुआ राजस्थान भी भूमि, भाषा और सस्कृति की दृष्टि से अन्य भारतीय प्रमुख प्रान्तों की तरह अपनी मौलिक विशेषताओं से युक्त है। राजस्थान की मौलिक विशेषताएँ कला, इतिहास और साहित्य के क्षेत्र में स्पष्ट तथा सुप्रतिष्ठित हो चुकी हैं। राजस्थानी कला, इतिहास और साहित्य के साथ राजस्थानी भाषा की ओर भी देश-विदेश के विद्वानों का ध्यान गया है, किन्तु बहुत ही कम। राजस्थानी भाषा अपने विस्तार-क्षेत्र, जन-संख्या और सुविस्तृत एवं उत्कृष्ट साहित्य के कारण प्रमुख भारतीय भाषाओं में उच्च स्थान प्राप्त करने योग्य है। किन्तु राजस्थानी भाषा का समुचित दृष्टि से अध्ययन और प्रकाशन बहुत कम हुआ है। इसलिये राजस्थानी भाषा के सम्बन्ध में लोगों की जानकारी नहीं के समान है। साथ ही इस विषय में विविध अग्रान्तिया भी प्रचलित हो गई हैं।

राजस्थानी जनता को उन्नति और हमारे देश-संघ के समुचित स्थान का संपूर्ण सहयोग प्राप्त करने के लिये राजस्थानी भाषा के समुचित

अध्ययन की तथा सम्बन्धित विषयो पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने की अनिवार्य आवश्यकता है ।

(क) विस्तार-क्षेत्र

राजस्थानी समस्त राजस्थान की प्रान्तीय और मातृभाषा है । पश्चिमी भारतवर्ष के उत्तर में सरस्वती या हाकडा नदी के मूठे धाले से दक्षिण में मतपुडा पर्वत के ढालो एव ताप्ती नदी तक और पूर्व में वेतवा नदी की ऊपरी धारा से पश्चिम में अमरकोट सहित सिन्ध नदी की पूर्वी धारा तक के समस्त भाग को भाषा, भूमि, रहन-सहन, इतिहास आदि की सांस्कृतिक एव वैज्ञानिक दृष्टि से राजस्थान के अन्तर्गत लिया जाना चाहिये ।^१ अंग्रेज शासको द्वारा, उनकी सुविधा के लिये निर्धारित राजपूताने की अवैज्ञानिक सीमाओं को सदा के लिये राजस्थान की सीमाएँ मान लेना सम्बन्धित जनता और राष्ट्र की उन्नति के लिये सर्वथा घातक है ।

राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत वर्तमान राजस्थान प्रान्त की बोलियों के साथ अजमेर-मेरवाडा, आबू-क्षेत्र, मालवा, भील-प्रदेश और पंजाब, काश्मीर आदि के गुर्जर-क्षेत्र, तमिल देश के सौराष्ट्र-क्षेत्र तथा वणजारो, सांसियो, वालदियो आदि खानाबदोश और पशुपालक जातियों की समस्त बोलियाँ गिनी जाती हैं ।^२ राजस्थान के मारवाड़ी व्यापारियों के साथ राजस्थानी भाषा भारतवर्ष के कोने २ में पहुँच गई है । राजस्थानी भाषा के बोलने वालो की संख्या लगभग दो करोड मानी गई है ।^३

१—हमारा राजस्थान (श्रीपृथ्वीसिंह महता) पृष्ठ-२ ।

२—राजस्थानी भाषा पर राजस्थान विश्व विद्यापीठ, शोध-मस्थान, उदयपुर द्वारा आयोजित महाकवि मूर्यमल आमन-भाषण (श्रीमन्नीतिमुमार चाडूर्या, एम ए, पी लिट्) पृष्ठ-५ और ६ ।

३—भारतवर्ष की कुछ अन्य भाषाओं के बोलने वालो की संख्या इस प्रकार है—

(१) तेलगू—२॥ करोड । (२) तामिल—२॥ करोड । (३) मराठी—० करोड ।

(४) पंजाबी—१॥ करोड । (५) उर्दिया—१ करोड १२ लाख । (६) कन्नड़—

१ करोड १२ लाख । (७) गुजराती—१ करोड १२ लाख ।

(८) सिन्धी—४० लाख । (९) आसामी—२० लाख ।

(१०) मारवाड़ी—१४ लाख ।

राजस्थानी भाषा का विस्तार-क्षेत्र भारत की अन्य सभी प्रान्तीय भाषाओं से बड़ा है ।

प्राचीन राजस्थानी का विस्तार-क्षेत्र आज की अपेक्षा अधिक था । वर्तमान राजस्थान-मालवा के अतिरिक्त समस्त गुजरात और सिन्ध, पंजाब तथा शूरसेन प्रदेश में मुख्यतः प्राचीन राजस्थानी, जिसको 'जूनी राजस्थानी' भी कहा गया है, प्रतिष्ठित थी । प्राचीन राजस्थानी का उक्त विस्तार-क्षेत्र गुर्जरो का भी विस्तार-क्षेत्र था, जिसमें एक ही भाषा एव सस्कृति सामान्यतः प्रचलित थी । १६ वीं शताब्दी में ही प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी ने गुजराती का स्वतन्त्र भाषा के रूप में विकास हुआ है । इसके पूर्व गुजराती राजस्थानी भाषा की बोली थी ।^१ गुजराती के साथ सिन्धी और पंजाबी भाषाएं भी भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से राजस्थानी से मिलती-जुलती हैं । सिन्धी और पंजाबी पर विदेशी प्रभाव बहुत अधिक पड़ा है । गुजराती की भाँति सिन्धी और पंजाबी की उत्पत्ति भी राजस्थानी से हुई है, ऐसा कहा जा सकता है ।

(ख) राजस्थानी भाषा की सीमाएँ

राजस्थानी भाषा की वर्तमान सीमाएँ निम्नलिखित भाषाओं एव बोलियों से मिलती हैं, अर्थात् राजस्थानी भाषा धीरे-धीरे निम्नलिखित भाषाओं एव बोलियों में विलीन हो जाती है—

- (१) उत्तर — पंजाबी । (२) पश्चिमोत्तर — हिन्दकी या पश्चिमी पंजाबी । (३) पश्चिम — सिन्धी, लहदा और पंजाबी । (४) दक्षिण-पश्चिम — गुजराती । (५) दक्षिण — गुजराती और मराठी ।

१—इण्डियन एन्टीक्वैरी (Indian Antiquary) के नम् १६१४ से १६१६ तक के अंकों में डॉ. एल. पी. टैस्तिगोरी का नवविधित निबन्ध (Notes on the grammar of the Old Western Rajasthan with special reference to Apabhramsa and to Gujarati and Marwari) और 'ओरिजिन एंड डेवलपमेन्ट ऑफ बंगाली लैंग्वेज' (Origin and Development of Bengali Language) श्री सुनीतिकुमार चाटुर्जा, एन. ए., डी. लिट., भाग-१, पृष्ठ-६ ।

(६) दक्षिण-पूर्व - मराठी और वुन्देली (हिन्दी) । (७) पूर्व - वुन्देली और ब्रजभाषा (हिन्दी) । (८) उत्तर-पूर्व - वांगड़ (हिन्दी) ।

(ग) राजस्थानी भाषा का वर्गीकरण

श्रीजार्ज ग्रियर्सन ने भारतीय भाषाओं की जाँच-पडताल (Linguistic Survey of India) नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में राजस्थानी भाषा की बोलियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—

(१) पश्चिमी राजस्थानी-मारवाडी-मेवाडी, डाटकी, थली, वीकानेरी, वागडी, शेखावाटी, खेराडी, गोडवाडी, देवडावाटी, आदि ।

(२) उत्तर-पूर्वी राजस्थानी—अहीरवाटी और मेवाती ।

(३) मध्य-पूर्वी राजस्थानी-ढंढाडी, तोरावाटी, खडी जैपुरी, काठेडा, राजावाटी, अजमेरी, किशनगढी, चौरामी (शाहपुरी), नागरचाल, हाडोती (रिवाडी सहित) आदि ।

(४) दक्षिण-पूर्वी राजस्थानी—मालवी (रागडी, सोधवाडी आदि) ।

(५) दक्षिणी राजस्थानी - निमाडी ।

श्रीग्रियर्सन ने वणजारो, गूजरो, भीलो, गोरखो (गोरखो से सम्बन्धित बोलिया — नेपाली, कुमाउनी, गढवाली आदि) और भारतीय खानाबदोश जातियों की (सम्बन्धित बोलियाँ—गहाडो, भामटी, बेलदारी, ओडकी, लाडी, मछरिया, कजरी, डोमी आदि) बोलियों को राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत नहीं माना है ।

राजस्थान का अधिकांश भाग पहाडी और रेतीला होने से राजस्थान के लोग समय-समय पर बाहर जाते रहे हैं । प्राचीन-काल में जब रेल और माल ढोने के अन्य आधुनिक साधन नहीं थे, तब राजस्थान के वणजारे तथा बालदिये आदि अपने सैकड़ो-हजारो बैलो पर सामान लाद कर व्यापार के लिये मार्ग में पडाव डालते हुए देश-विदेश में बहुत दूर दूर तक पहुँचते थे । इसी प्रकार गुर्जर, ईर, रेवारी, कीर और गायरी आदि पशुपालक जातियाँ दुष्काल पडने पर घास-पानी के अभाव में राजस्थान से बाहर जाती रहीं हैं । रेलों आदि के चलने से राजस्थान के वणजारों को पुनः अपने राजस्थान में आने का साधन अर्थात् व्यापारिक सामान नहीं मिला और उनमें से अधिकांश जहाँ थे वही बस गये । उक्त जातियाँ

राजस्थानी बोलियों का ही व्यवहार करती हैं। बहुत से गुर्जर लगभग एक हजार वर्ष पूर्व उत्तरी राजस्थान से काश्मीर एवं अन्य उत्तरी पहाड़ी घाटियों में जा कर बस गये थे, इसलिये इनकी बोलियाँ राजस्थानी के अन्तर्गत मानी जानी चाहिये। भीली बोलियाँ गुजराती से प्रभावित हैं, किन्तु जैसा कि स्पष्ट है, गुजराती की उत्पत्ति राजस्थानी से हुई है तो भीली बोलियों को गुजराती के अन्तर्गत नहीं, राजस्थानी के अन्तर्गत जानना चाहिये। इस विषय में एक बात यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि प्राचीन काल में राजस्थान के अधिकांश भागों में भीलों के राज्य थे। इसलिये वीर भील जाति के लोग स्वभावतः राजस्थान एवं राजस्थानी भाषा से दूर हटना स्वीकार नहीं करेंगे। राजस्थान में भीलों का प्रमुख क्षेत्र 'वागड' और भीली बोली 'वागडी' के नाम से प्रसिद्ध है। नेपाल की तराई के बहुत से गोरखे भी राजस्थान से ही जा कर बसे थे और आज भी वे अपनी बोलियों को सुरक्षित रखे हुए हैं, इसलिये इनकी बोलियाँ भी राजस्थानी से सम्बन्धित हैं।^१ इस विषय में पूरी जाँच-पड़ताल की आवश्यकता है कि इन बोलियों का राजस्थान से कितना सम्बन्ध है तथा इन पर बाहरी प्रभाव किस प्रकार पड़ा है।

(घ) राजस्थानी भाषा का नामकरण

भारतवर्ष की कई अन्य आधुनिक भाषाओं की भाँति राजस्थानी भाषा का नाम 'राजस्थानी' भी आधुनिक विद्वानों की देन है, और यह नाम अब देश-विदेश में सर्वत्र प्रचलित हो गया है।

'राजस्थानी' नाम 'राजस्थान' के आधार पर प्रचलित हुआ है। कर्नल जेम्स टाड के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ "एनाल्स एण्ड अन्टि-क्विटीज ऑफ राजस्थान" (Annals and Antiquities of Rajasthan) के प्रकाशन में राजस्थान की महिमा सर्वत्र स्थापित हुई है। किन्तु समस्त राजस्थानी जनता www.jagadgururambhadracharya.com

१—श्रीलुनीतिवृत्त चारुव्यां भी गूडरी, भीली आदि बोलियों को राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत ही मानते हैं (राजस्थानी भाषा पर नूतन-आन्त-भाषण) पृष्ठ-१।

या 'राजस्थान-रायथाण' पहले से जनता में प्रतिष्ठित था, जिसका आधार कर्नल जेम्स टाड ने लिया है। राजस्थानी भाषा-भाषियों के कई राज-नैतिक विभागों में बँटे हुए रहने से और राजस्थान के बहुत विस्तृत होने से अब तक राजस्थान के विभिन्न भागों के विभिन्न नाम रहे हैं।^१ राजस्थानी भाषा की बोलियों के विविध नाम भी राजस्थान के विभिन्न भागों के अनुसार प्रचलित हुए हैं। किन्तु समस्त राजस्थान की सांस्कृतिक एवं भाषा-वैज्ञानिक एकता पूर्ण रूपेण प्रतिष्ठित रही है। इसलिये प्रान्तीय एकता-सूचक नाम 'राजस्थान' सर्वग्राह्य सिद्ध हुआ है। साथ ही सम्बन्धित बोलियों में भाषा-वैज्ञानिक एकता होने से प्रान्तीय भाषा के रूप में 'राजस्थानी' को मान्य करना आवश्यक हुआ है।

राजस्थानी, मुख्यतः पश्चिमी राजस्थानी को प्राचीन काल में 'मरुभाषा' कहा गया है।^२ राजस्थानी भाषा का साहित्यिक रूप मुख्यतः मारवाडी रहा है और इसी रूप में प्राचीन साहित्य भी बड़े परिमाण में उपलब्ध होता है। राजस्थान के बाहर राजस्थान के लोग, फिर चाहे वे किसी भी भाग के निवासी हों मारवाडी कहे जाते हैं और उनकी भाषा भी मारवाडी मानी जाती है। मारवाड राजस्थान का विशेष भू-भाग है। विस्तार-क्षेत्र, जन-संख्या और साहित्य की दृष्टि से मारवाडी कई भारतीय भाषाओं से भी बढ कर है। मारवाडी और राजस्थान की अन्य बोलियों में विशेष अन्तर नहीं है। राजस्थानी की एक विशेष साहित्यिक शैली 'डिगल' का मूल आधार भी मारवाडी है, जिसको राजस्थान के समस्त भागों के साहित्यकारों ने अपनाया है। इसलिये 'मारवाडी' को डा० ग्रियर्सन और श्रीसुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के शब्दों में 'खड़ी राजस्थानी' (Standard) मानना सर्वथा उपयुक्त है।

१ - राजपूताने का इतिहास (श्रीगौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, डी, लिट्) भाग-१, पृष्ठ-२।

२ - श्रीज्योतन द्वारा ८ वीं सदी में सुपमिद्ध ग्रन्थ www.jagadgururajteachings.com पर प्रकाशित। पश्चिम भाषाओं में मरु देश की भाषा "मरुदेशिया" का भी उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार १७ वीं सदी में श्रीअनुलफनन ने भी "आइने अकबरी" में "मरुभाषा" को स्वतंत्र रूप में मान्य किया है।

दूसरा अध्याय

राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति और विकास

(क) आर्य - भाषा - परिवार

संसार के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की जनता बसी हुई है। आधुनिक खोज के अनुसार ज्ञात हुआ है कि उत्तरी भारत, ईरान-अफगानिस्तान आदि मुस्लिम-प्रदेश और यूरोप की अधिकांश जनता मूलतः आर्य हैं। समस्त आर्य-जाति से सम्बन्धित भाषा - परिवार को 'भारत-जर्मनिक' या 'भारत-यूरोपीय' नाम दिया गया है। किन्तु 'भारत-जर्मनिक' कहने से शेष यूरोप और ईरान, अफगानिस्तान का इस परिवार से सम्बन्ध नहीं ज्ञात होता तथा 'भारत-यूरोपीय' कहने से ईरान-अफगानिस्तान आदि की भाषाओं का समावेश इस परिवार में नहीं ज्ञात होता। साथ ही दक्षिण - भारत की भाषाएँ 'द्रविड-परिवार' की हैं, जिनका समावेश उक्त परिवार में नहीं किया जा सकता। इसलिये उक्त दोनों ही नाम दोष-पूर्ण हैं। इस भाषा-परिवार का नाम "आर्य-भाषा-परिवार" सर्वथा उपयुक्त जान पड़ता है, जिससे समस्त आर्य - जनता की मूल एकता का बोध होता है। प्राचीन काल की वैदिक-संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, फारसी और आधुनिक काल की अंग्रेजी, हिन्दी, बंगाली तथा राजस्थानी आदि प्रमुख भाषाएँ आर्य - भाषा परिवार से सम्बन्ध रखती हैं।

(ख) प्राचीन भारतीय आर्य - भाषा - काल

आर्य लोग अपनी जन्म-भूमि^१ से धीरे-धीरे यूरोप और ईरान-अफगानिस्तान के साथ उत्तरी भारतवर्ष में भी फैल गये। इस प्रकार आर्य-भाषा-परिवार की भारतीय शाखा अवतीर्ण हुई। आर्यों ने विविध प्रकार के जलवायु में, विविध प्रकार की परिस्थितियों में और विविध प्रकार की

१ - आर्यों की जन्म-भूमि अर्थात् आदि-देश अभी तक अनिश्चित है।

जानियों के सम्पर्क से अपनी भाषाओं का विकास किया है। इसलिये आर्य-भाषा-परिवार की भाषाओं में बहुत अन्तर उपस्थित हो गया है। प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा के रूप हमें ऋग्वेद से प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद का समय कम से कम १,५०० ई० पूर्व माना गया है। इसमें पूर्व की किसी भाषा के रूप विश्व में नहीं मिलते। हडप्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई ने लगभग ६ हजार वर्ष पूर्व की भारतीय सभ्यता पर प्रकाश पड़ा है। उक्त खुदाई से प्राप्त तामडा, पन्ना आदि के वैज्ञानिक विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि उनका सम्बन्ध वर्तमान अलवर, किशनगढ़ और मेवाड़ की अर्बली-पहाड़ियों की खानों से है। राजस्थान में वैराट की खुदाई से भी प्रागैतिहासिक नव्याश्म युगके कई हथियार मिले हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक काल से पूर्व, आज से लगभग ६ हजार वर्ष पहले राजस्थान में सभ्यता का उदय हो चुका था। इस सभ्यता को भारतवर्ष की प्राचीनतम सभ्यता कहा जा सकता है। किन्तु इस काल की भाषा का कोई स्पष्ट रूप नहीं मिलता।

वैदिक भाषा अपने समय में लगभग सारे उत्तरी भारत में फैली हुई थी। इस वैदिक भाषा में तीन प्रकार के स्थान-भेद पाये जाते हैं। १ - पश्चिमी पंजाब की बोली, जो ईरान के पड़ोस से सम्बन्धित थी। ऋग्वेदिक भाषा को 'छान्दस' कहा गया है, जिसका आधार यही बोली थी। २ - उत्तरी मध्यप्रदेश की बोली और ३ - मध्य देश के पूरव की बोली। वेदों का निर्माता कोई विशेष साहित्यकार नहीं हुआ। वेदों का निर्माण वास्तव में जनता की लोक-साहित्य-निर्माणकारी सामूहिक अभिव्यक्ति द्वारा हुआ था। इसलिये ईश्वर ही वेदों का निर्माता मान लिया गया। बहुत समय तक वेद मौखिक ही प्रचलित रहे और फिर विनाश अथवा परिवर्तन की आशका के कारण लिपिवद्ध कर लिये गये। हमारे प्राचीनतम साहित्य में सामूहिक अभिव्यक्ति द्वारा लोक-साहित्य-निर्माण की परम्परा ही मिलती है, जिसमें वेदों के अतिरिक्त धर्म से अन्य ग्रन्थ भी मिलते हैं। व्यक्तगत साहित्य-निर्माण की परंपरा पीछे की है। इसलिये वेदों की भाषा लौकिक ही मानी जा सकती है।

जनता द्वारा धीरे-धीरे वैदिक भाषा में परिवर्तन हो गये । ऐसी अवस्था में 'वैयाकरणो ने नियमो-उपनियमो द्वारा इसको शुद्ध अर्थात् 'संस्कृत' करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया । अन्त में पाणिनी (५०० ई० पूर्व) ने अपने व्याकरणगत नियमो-उपनियमो द्वारा इस भाषा को पूर्ण रूपेण 'संस्कृत' कर परिवर्तनो से सदा के लिये सुरक्षित कर दिया । तब से संस्कृत भाषा आज तक अपरिवर्तनशील बनी हुई है और इसमें बराबर साहित्य-निर्माण का कार्य होता रहा है । इस प्रकार प्राचीन भारतीय-आर्य-भाषा के विकास का यह काल १५०० ई० पू० से ५०० ई० पू० तक माना जाता है ।

(ग) राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति

लौकिक भाषा का संस्कृत रूप स्थिर हो जाने पर भी जनता द्वारा अपनी भाषा के विकास का कार्य होता रहा । इस प्रकार इस भाषा का रूप परिवर्तित हो गया और जनता की सुविधा के लिये इसमें साहित्य भी बनने लगा । इस नवविकसित एव परिवर्तित भाषा को 'प्राकृत' कहा गया । इसके प्रारम्भिक रूप को 'पाली प्राकृत' और 'अर्धमागधी प्राकृत' कहा गया । जनता के लिये सर्वथा सुगम, जन-भाषा के इन नवीन रूपो को बौद्ध और जैन साहित्यकारो ने अपनाया तथा इनमें साहित्य-निर्माण का कार्य किया । पीछे से मागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री प्राकृतो के रूप भी साहित्य-क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो गये । कालान्तर में वैयाकरणो ने प्राकृत को भी अपने नियमो से स्थिर कर दिया । किन्तु जन-भाषा का परिवर्तनशील प्रवाह नहीं रुका और वह जनता की सुविधा के अनुकूल विकसित होता रहा । फिर जनता से निकट सम्पर्क रखने वाले साहित्यकारो ने इस नवीन विकसित रूप को अपनाया । ६ठी सदी के आसपास विकसित लोक-भाषा के इस नवीन रूप को 'अपभ्रंश' कहा जाने लगा । अपभ्रंश के मुख्यतः तीन रूप www.rajteach.com ब्राज्ज और उप नागर । इनमें से पश्चिमी भारतवर्ष की 'नागर अपभ्रंश' ही मुख्य मानी गई है । नागर अपभ्रंश में प्रचुर मात्रा में उत्कृष्ट साहित्य

का निर्माण हुआ और यह भाषा अपने समय में भारत की प्रमुख साहित्यिक भाषा बन गई । नागर-अपभ्रंश राजस्थान की अपनी भाषा थी । गुजरात तब सांस्कृतिक दृष्टि से पूर्ण रूपेण राजस्थान का ही भाग था । इसी महिमामयी नागर-अपभ्रंश से सन् १००० ई० के आसपास जन-भाषा राजस्थानी की उत्पत्ति हुई । वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं में सर्व प्रथम साहित्यिक रूप में प्रतिष्ठित होने वाली भाषा भी राजस्थानी ही है ।

राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति के विषय में यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने योग्य है कि राजस्थान-गुजरात में प्रचलित जिस मूल भाषा से राजस्थानी की उत्पत्ति हुई है, उसका सम्बन्ध सिन्ध-पजाव से रहा है, मध्य प्रदेश से नहीं । राजस्थान-गुजरात में आर्य-भाषा का प्रवेश भी मध्य देश से नहीं हो कर पजाव-सिन्ध से हुआ है । अशोक के गिरनार लेखों की भाषा से यह स्पष्ट है कि अशोक के समय में जो भाषा यहाँ प्रचलित थी वह शौरसेनी या मध्यदेशीय नहीं थी । अशोक-काल के उपरान्त पश्चिमी भारतवर्ष अर्थात् राजस्थान-गुजरात, पजाव और सिन्ध की भाषा में एक ही प्रकार की विशेषताएँ प्रकट होती रही । ये विशेषताएँ शौरसेनी या मध्यदेशीय भाषा से मेल नहीं खाती हैं । 'द्व' का 'व' होना ('द्वादश' का 'द्वादस', 'द्वौ' का 'वे', 'द्वारिका' का 'वारिका'), 'क्ष' का 'छ' होना ('क्षुद्र' का मध्यदेश में 'खुद्' किन्तु सौराष्ट्र में 'छुद'-'छुद्र', 'क्षमा' का 'छमा' आदि), संस्कृत 'स्यति', 'स्यत', 'स्यन्ति' के समान रूप विकसित होना और अघोष महाप्राण वर्णों (च, झ, ढ, भ आदि) का विशेष उच्चारण एवं 'ह'-कार की विकृति आदि राजस्थानी, गुजराती, पजावी, और सिन्धी में रही हुई समान विशेषताओं से यह स्पष्ट है कि राजस्थान की मूल प्राचीन भाषा एवं राजस्थान की प्राकृत-अपभ्रंश, मध्यदेशीय या शौरसेनी भाषा से विकसित नहीं हुई है ।^१ इस प्रकार राजस्थानी मध्यदेशीय भाषा के अन्तर्गत नहीं मानी जा सकती।

(घ) प्राचीन राजस्थानी

‘नागर अपभ्रंश’ जैसी सुसपन्न भाषा की इकलौती पुत्री राजस्थानी का पोषण १० वीं शताब्दी तक मचित्त किये हुए उत्कृष्ट भारतीय भाषा-तत्त्व से हुआ, इसलिये राजस्थानी शीघ्र ही शक्ति-सम्पन्न बन गई। जनता के निकट सपर्क से चलने वाली राजस्थानी भाषा ने अपनी माँ ‘अपभ्रंश’ और दादी ‘प्राकृत’ की मूल्यवान घरोहर की अवहेलना कर संस्कृत से सीधा सम्बन्ध नहीं जोड़ा, जिससे राजस्थानी को सदा ही जन-शक्ति का सहयोग मिलता रहा। जिस प्रकार लोक-भाषा ‘प्राकृत’ और ‘अपभ्रंश’ को महत्त्व दिया गया उसी प्रकार जन-भाषा राजस्थानी को भी विशेष रूप में सम्मानित किया गया।

‘अपभ्रंश’ और प्राचीन राजस्थानी के काल में सीमा-रेखा खींचना कठिन है। क्योंकि राजस्थानी भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव इतना अधिक मिलता है कि राजस्थानी भाषा का पूरा ज्ञान नहीं रखने वाले व्यक्ति वर्तमान या मध्यकालीन राजस्थानी रचना को भी बहुत पुरानी समझ बैठते हैं। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र (२री-३री शताब्दी)^१ और वलमी नरेश धरसेन द्वितीय के शिलालेख (७ वीं शताब्दी का प्रारम्भ)^२ से ज्ञात होता है कि अपभ्रंश २री-३री शताब्दी में केवल बोलचाल की भाषा थी तथा बाद में ६ठी-७वीं शताब्दी तक साहित्यिक क्षेत्र में सम्मानित हुई। इसी प्रकार राजस्थानी का प्रारम्भ में अर्थात् १००० ई० के पूर्व बोलचाल की भाषा रहना निश्चित है। १००० ई० के बाद से राजस्थानी के दर्शन साहित्यिक क्षेत्र में भी होने लगते हैं। इस प्रकार प्राचीन राजस्थानी का समय १००० ई० से प्रारम्भ हो कर १५०० ई० तक पहुँचता है। क्योंकि १६ वीं शताब्दी से ही, जैसा कि स्पष्ट कर दिया गया है गुजराती राजस्थानी से अलग हो कर स्वतंत्र भाषा के रूप में प्रतिष्ठित

१- पद्मेतलु विक्षेय मच्छन प्राकृतं तथा ।

अथ उर्ध्वं प्रवध्यामि देशभाषा प्रकल्पनम् ॥

२- संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश-भाषात्रय-प्रतिबद्ध-प्रवर्धरचना-निपुणतरात-करण ।

हो जाती है, राजस्थानी की पिगल एव टिगल शैलियाँ परिपक्व हो जाती ह और मीराँ एव अन्य सन्त-कवियों की साधना के फलस्वरूप राजस्थानी की लौकिक शैली भी प्रतिष्ठित हो जाती है ।

प्राचीन राजस्थानी के नाम के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है । श्रीचन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने इस भाषा का नाम 'पुरानी हिन्दी' दिया है ।^१ श्रीमोहनलाल दलीचद देसाई इसे 'जूनी-हिन्दी-जूनी-गुजराती' मानते हैं ।^२ साथ ही गुजरात के कुछ विद्वान् इस भाषा को केवल 'जूनी गुजराती' मानते हैं ।^३ सर्व श्री प० सूर्यकरण पारीक, प० नरोत्तमदास स्वामी और डा० रामसिंह इसको 'जूनी राजस्थानी' न मान कर 'उत्तरकालीन अपभ्रंश' मानते हैं ।^४ इन सब के विपरीत डा० तेस्सितोरी ने इसको 'प्राचीन राजस्थानी' ही माना है और उसके पश्चिमी रूप (प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी) से १६ वीं सदी में गुजराती की उत्पत्ति मानी है ।^५

प्राचीन राजस्थानी की कई रचनाएँ जनता द्वारा आज केवल वर्तमान राजस्थानी में ही कुछ परिवर्तित रूप में कही-सुनी जाती हैं, गुजराती या हिन्दी में नहीं । वर्तमान राजस्थानी की मूल रचनाएँ जिस भाषा में मिलती हैं, उसे प्राचीन राजस्थानी के अतिरिक्त क्या कहा जा सकता है ? उदाहरणार्थ श्रीहेमचन्द्राचार्य द्वारा प्राकृत व्याकरण के ८ वें अध्याय में उद्धृत कुछ 'दूहो' को देखिये

प्राचीन राजस्थानी

वायनु उगुवन्तिअप, पिउ दिट्टुउ स्हमन्ति ।

अधा दलया महिहि गय, अध्वा फुट्ट तउत्ति ॥

१-नागरी पञ्चारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण भाग-२ ।

२-नैन गुर्जर-मन्त्रिओ, प्रथम भाग, प्रस्तावना, पृ०-१४ ।

३-आपणा ऋविओ (श्री० जे० शा० शास्त्री) ।

४-टोला मासुरा दश, प्रस्तावना, पृ०-१४० ।

५-इन्डियन एन्टीक्वेरी Indian Antiquary के सन् १९१४ से १९१६ तक के

वर्तमान राजस्थानी

काग उड़ावण धण खड़ी, आयो पीव भड़क ।
आधी जुड़ी काग गल, आधी गई तड़क ॥

प्राचीन राजस्थानी

पुत्ते जाणें कवण गुण, अवगुरा कवण मुण ।
जा वसीकी मुहड़ी, चम्पिजई अवरेण ॥

वर्तमान राजस्थानी

खेटा जाया कवण गुण, अवगुरा कवण धियेण ।
जा ऊभा धर आपणो, गंजीजै अवरेण ॥

प्राचीन राजस्थानी

जइ यडु रावणु जाइयज, दह मुडु इक्कु सरीर ।
जणणि विवंधी चितवई, कवणु पियावऊ खीर ॥

वर्तमान राजस्थानी

राजा रावण जलमियो, दस मुख पक सरीर ।
जणनीने सासो भयो, किय मुख घालू खोर ॥

साथ ही मध्यकालीन और वर्तमान राजस्थानी की उच्चारण, व्याकरण, शब्दकोश, लिपि और साहित्य से सम्बन्धित समस्त विशेषताएँ, जिन पर आगे के अध्याय में प्रकाश डाला जायगा, मूलतः इस भाषा में मिलती हैं । इतना ही नहीं राजस्थानी में प्रतिफलित अनुपम विषय एवं छन्द-योजना आदि का बीजारोपण भी इसी भाषा में हुआ है । ऐसी अवस्था में इसको प्राचीन राजस्थानी के रूप में नहीं मानना राजस्थानी की जड़ों पर कुठाराघात करना है । खड़ी बोली हिन्दी को छोड़िये, वज और अवधी में भी इस भाषा की कोई विशेषता नहीं मिलती है । हिन्दी के आदि महाकवि चन्द और आदि-काव्य पृथ्वीराज रासा www.jagadgururambhadracharya.com १६ वीं सदी से अधिक सिद्ध नहीं की जा सकी है । यदि पृथ्वीराज रासा १२वीं शताब्दी में लिखा भी गया होगा तो उसकी मूल भाषा अपभ्रंश या

प्राचीन राजस्थानी पिंगल ही होगी । यही अवस्था इस काल से सम्बन्धित अन्य ग्रन्थों की भी है, तो फिर कैसे इसको पुरानी हिन्दी कहा जा सकता है ? हाँ, यदि हिन्द देश की प्रत्येक भाषा को अर्थात् बंगाली, मराठी, राजस्थानी, ब्रज, तामिल, तैलगू आदि सब को 'हिन्दी' मानते हुए इसे प्राचीन राजस्थानी के स्थान पर 'पुरानी हिन्दी' कहा जाय तो किसी को आपत्ति नहीं हो सकती ।

जहाँ तक 'प्राचीन राजस्थानी' को 'जूनी गुजराती' मानने का प्रश्न है, यही कहना चाहिये कि गुजराती की उत्पत्ति 'प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी' से हुई है और फिर गुजराती में राजस्थानी की मर्यादा का पालन नहीं किया गया है । गुजराती के आदि कवि नरसी मेहता का समय भी १५०० से १५५८ ई० माना गया है । ऐसी अवस्था में 'प्राचीन राजस्थानी' को 'जूनी गुजराती' स्वीकार करना राजस्थानी कहावत के अनुसार 'ऊदली लाराँ डायचो' (अन्यत्र चली जाने वाली स्त्री के साथ दहेज) माना जायगा । राजस्थानी की समस्त प्रमुख विशेषतायें प्राचीन राजस्थानी में भली प्रकार से प्रकट हो चुकी थी । केवल 'अपभ्रंश' का प्रभाव ही शेष था । तो फिर 'प्राचीन राजस्थानी' को उत्तरकालीन अपभ्रंश कहना भी न्याय-मगत नहीं जान पड़ता ।

जन-भाषा राजस्थानी वैदिक भाषा (छान्दस), प्राकृत और अपभ्रंश-नामक लोक-भाषाओं की एक मात्र उत्तराधिकारिणी बन कर भारतीय जन साहित्य के प्रवाह को निरन्तर चालू रखने में समर्थ हुई है । प्राचीन राजस्थानी हमारे भारतवर्ष की वर्तमान और प्राचीन जन-भाषाओं की श्रवणता को जोड़ने वाली एक विशेष कड़ी है ।

“प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी” अपने समय की प्रधान साहित्यिक भाषा मानी गई है । साहित्यिक भाषा के रूप में प्राचीन राजस्थानी का प्रसार न केवल समस्त राजस्थान-गुजरात में था, बल्कि पंजाब और कबीर की रचनाओं ने प्रमाणित है कि पूर्व में काशी तक था ।

जैन आचार्यों एव साधु-साध्वियों और यतियों ने प्राचीन राजस्थानी में प्रचुर मात्रा में साहित्य का निर्माण किया । इन्होंने पद्य के साथ गद्य में भी अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं । चारण कवियों ने भी प्राचीन राजस्थानी में अपनी विशेष शैली "डिंगल" की नीव रखी और इसमें बहुत से उत्कृष्ट गीत और दूहे आदि लिखे । इस काल का राजस्थानी भाषा में जितना अधिक साहित्य मिलता है, उतना किसी अन्य भारतीय भाषा में नहीं मिलता ।

प्राचीन राजस्थानी के कुछ नमूने इस प्रकार हैं—

नंदेन्द्र ललितक, पर मूढ कहण न जाई ।

जो काण्डुलि मूढक, सो वाहड़ी म्नाई ॥

सुमनसहि जिनि दह हिद, पिय उक्कलि करेई ।

दिरह दुयानि दहेवि करि, आनाजलि सिंचेई ॥

—अब्दुलरहमान (१०१० ई०) ।

गयण-नना-संगम लोल-कल्लोल-परपल ।

खिक्करणुक्कल नक्क-चक-चरमण-दुहकरु ॥

उच्छलत-गुर-पुच्छ-नच्छ रिद्धो लि निरतरु ।

कलन्माण जालाजडाल रद्वानल दुद्धरु ॥

आवच स्यायलु जलाहि लहु गोपई जिवते नितरहि ।

नोसेस-दणए-गण-निद्ववणु पान्नाहु वे संमहि ॥

—सोमप्रभु सूरि (११८५ ई०) ।

मअ लुकिअ अकिअ दहरि तरणि,

जय भरतु नेरिअ सुदु पले ।

नहि लोदुर पिदुइ रिठ-रिठ उदुइ,

जक्कप वीर हनीर चले ।

“राजा अनर महामात्यु वे जणा अश्वापडागु तउ अटवी माहि गया । भृत्तिया हूया । वणफल खाथा । नगरि अविथा । राजा सुस्कारु नेडी करुगे रुहुः ‘जिके भदय-भेद संभवह ति सगलाई करउ’ सुस्कारे कोभा । राजा आगः आणिया । राणेदि चीतविउ-मधुर मोदक पूफकादिक भदय-भेद पात्रेई भावेमिई, इणिए कारणि पनेउ वाकुल दोकलादिक भदयभेद भली करी पाद्यः माभुगहार-भन्नाणु कोधउ ।”

—तरुणप्रभ सूरि (१३५५ ई०)

एकूणि वनि वसनवा, एउअ अनर कर ।
सीह कवड्डी ना लहद, गैवर लवय विकार ॥
गैवर गली गल धीयी, जइँ रउँ तहँ जाइ ।
सीह गलथरण जे सहँ, तो दह लक्य विकार ॥

—सिवदास चारण (१४१४ ई) ।

सीयालइ तउ मो पइइ, उन्हालइ ल् वाइ ।
वरसालइ भुइँ चीरणी, चालण रुत्ति न काइ ॥
धरती जेहा भरसमा, नमणा जेही कैलि ।
मज्जीठां जिम रच्चणां, दईनु सज्जण मेलि ॥

—ढोला मारूरा दूहा (१४७४ ई०) ।

(ड) मध्यकालीन राजस्थानी

सोलहवी शताब्दी ईस्वी के प्रारम्भ में ही राजस्थानी से गुजराती अलग भाषा के रूप में विकसित होने लगी । गुजरात पर पूर्ण रूपेण विदेशी शासकों का आधिपत्य स्थापित हो जाने से राजस्थान और गुजरात की राजनैतिक एकता नष्ट हो गई, किन्तु चारण-कवियों और जैन-आचार्यों ने दोनों प्रान्तों की सांस्कृतिक एकता को बनाए रखने का बराबर प्रयत्न किया । कई विशिष्ट चारणों और जैन आचार्यों की रचनाएँ राजस्थान-गुजरात में समान रूप से प्रचलित रही । राजस्थानी भाषा, साहित्य, इतिहास एवं संस्कृति के द्वारा गुजराती भाषा और साहित्य बराबर प्रेरणा एवं पोषणशक्ति प्राप्त करते रहे हैं । www.rajteachers.com

‘डिगल’ जिसकी नींव प्राचीन राजस्थानी में पड़ चुकी थी, मध्यकाल में अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँच गई । डिगल विकसित होती हुई

वोलचाल की राजस्थानी से कुछ दूर जा पड़ी। इसमें जानबूझ कर द्वित्त वर्णों का प्रयोग किया जाने लगा और शब्दों की तोड़-मरोड़ भी बहुत बढ़ गई। मारवाड़ी के साहित्यिक रूप में 'डिंगल' स्थिर सी हो गई और समस्त राजस्थान के साहित्यकार, मुख्यतः चारण कवि इसमें साहित्य-रचना करने लगे। 'डिंगल' में गीत और दूहे छंद पर्याप्त मात्रा में लिखे गये, जो आज भी अपनी उत्कृष्टता के कारण जनता में प्रचलित हैं।

'डिंगल' के स्थिर-साहित्यिक हो जाने पर मध्यकालीन राजस्थानी की लौकिक शैली भी अस्तित्व में आई। मीरा ने सरल, सरस, लौकिक राजस्थानी में अपने पद प्रस्तुत कर अखिल भारतीय लोकप्रियता प्राप्त की। अन्य कवियों-कवियत्रियों ने भी लौकिक राजस्थानी में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की। मध्यकालीन राजस्थानी की लौकिक शैली में सन्त-साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। जैन सन्त-साहित्य पर अपभ्रंश का प्रभाव अधिक मिलता है।

इसी काल में राजस्थान का सम्बन्ध दिल्ली-आगरा से भी स्थापित हुआ। मध्यदेश से सम्बन्धित कवियों ने ब्रज-प्रभावित राजस्थानी में अपनी रचनाएँ-प्रस्तुत की। राजस्थानी की ब्रज या शौरसेनी से प्रभावित यह शैली 'पिंगल' के नाम से प्रसिद्ध है। कई सन्तों ने भी इसमें अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। 'पिंगल' का मुख्य क्षेत्र पूर्वी राजस्थान रहा।

मध्यकालीन राजस्थानी पद्य के अतिरिक्त गद्य में भी बहुत विकसित हुई। इस काल की ख्यात, वात, वसावली, कथा, हाल, हकीगत, विगत, पीढी, याद आदि राजस्थानी गद्य की रचनाएँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। साथ ही हितोपदेश, पंचतंत्र, सिंहासन-वत्तीसी आदि के अनुवाद, टीकाओं तथा शिलालेखों और पट्टों-परवानों के रूप में भी राजस्थानी गद्य मिलता है।

इस प्रकार १५०० ई० से १८५० ई० तक राजस्थानी साहित्य में अपनी विविध शैलियों में सुप्रतिष्ठित हो जाती है। मध्यकालीन राजस्थानी में मस्कल के अतिरिक्त भारतीय राजस्थानी के उदात्त रूप में का लक्षण भी है

जाता है । मध्यकालीन राजस्थानी भाषा की कुछ रचनाओं के नमूने इस प्रकार हैं—

लागी मोहि राम खुमारी हो ॥ टेक ॥
रमरम वरसे मेहड़ो, भीजे तन नारी, हो ।
चहुँ दिम चमकै दामणी, गरजे धन भारी, हो ॥
रुतगुर मेढ बताइया, खोली भरम किंवारी, हो ।
सब घट दीसै आतमा, रुवहींमें न्यारी, हो ॥
दीपक जोळ ग्यानरो, चहुँ अगम अटारी, हो ।
मीरां दामी रामरी, इमरत बलिहारी, हो ॥

—मीरांबाई (१४६६-१५४७ ई०) ।

है अकबर घर हाण, टाण ग्रहे नीची दीमट ।
तजे न ऊँची ताण, पोसन राण प्रतापमी ॥ १ ॥
उटइ रीठ अणपार, पीठ लग लारसा पिम्पण ।
वैदीगार वकार, पहठउ उदियाचल पतउ ॥ २ ॥

—दुरमाजी आढा (१५३६-१६५६ ई०) ।

कालि करि कांठलि उजलि कोरण धारे शबण धरहरिया,
गलि चलिया दमों दिसि जलग्रभ धभि न विरहिरिण-नरण भिया ।
वररुतह ददइ नइ अनइ वाजिया म्घण गाजियउ पुहिर मदि,
जलनिधि ही समाइ नहि जल, जलजाला न ममाइ जनदि ।
धर स्यामा मरिम स्यामतर जलधर गेघूचे गलिवाहा घाति,
त्रमि तिखी सन्ध्यावदण भूला रिखय न लखे म्कइ दिनराति ॥

—महाराज पृथ्वीराज (१५५०-१६०१ ई०) ।

कोई समद मारे साह गयो थो । तिकै एक ब्रतक देह द्रीठी थी । तिखरी वान राणा
कुम्भानू काही । तद राणो कुम्भो चित भरमीको हूयो । कयु हीरो कयु ही
यौलै । तद कुम्भलमेर रहता । सु गढ उपर एक ठो मामा कुंठ है । मामा
वद है । तठै राणो वैठो थो । कुम्भारै वैठो सुदायत यठो थो । तिख गार
काटारी याने आप पाट वैठो ।

—मुहणोत नैणसी (१६११-१६७१ ई०) ।

कठन्नी श्रीवा श्रुत गुरुदल वैदण निले तिलक वृत्त चन्द्र ।
स्ति स्तिपेच कुषट हीराम्द, क्रीट, मुगट सोर्मे सुजकंद ॥
जलहर वरण भगत भव मंजण, मीता मन रंजण सजसाथ ।
मो नन अण्य सु जण्य स्तिमण्य, नित रण्य वण्य वसौ खुनाथ ॥

—मंछाराम सेवक (१७७४-१८३६ ई०) ।

(च) आधुनिक राजस्थानी

राजस्थानी भाषा-विकास के आधुनिक काल का प्रारम्भ सन् १८५० ई० से मानना चाहिये । इन समय तक समस्त राजस्थान पर अंग्रेज शासकों का अधिकार स्थापित हो चुका था । आधुनिक काल में भी राजस्थानियों को अपने देश की स्वाधीनता के लिये संघर्ष सहना पड़ा है । राजस्थानी जनता के स्वाधीनता-ग्राम में संगठन और प्रचार आदि के महत्वपूर्ण कार्यों के लिये राजस्थान के जन-कवियों ने सरल-सरस राजस्थानी भाषा में ही अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं । जनता में इन रचनाओं का बहुत प्रचार हुआ । राजस्थानी शौर्य के गायक चारण-कवियों ने भी 'डिगल' को विविध प्रकार के वन्धनों तथा स्थिरता से छटकारा दिलवा कर जनता के निकट ला रखा । उदाहरण के लिये महाकवि सूर्यमल, केसरीसिंह वारहठ (कोटा) और नायूदान महियारिया आदि की डिगल रचनाएँ मध्यकालीन डिगल की अपेक्षा अधिक सरल और सरस हैं ।

राजस्थानी भाषा की लौकिक शैली जिमको मीराबाई और कई अन्य सन्तों ने प्रतिष्ठित किया था, आधुनिक काल में विकसित होती रही है । महाराज चतुरसिंह जैसे साहित्यकारों ने इसी शैली में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कर जनता में लोकप्रियता प्राप्त की हैं ।

विदेशी शासकों ने भारतीय शासन को पूर्ण रूपेण अपने अधिकार में रखने के लिये वीरता के क्षेत्र में प्रतिष्ठित राजस्थानी जनता की वीर-गाथाओं को देवाने के कई प्रयत्न किये । अंग्रेज शासकों ने स्थानीय नरेशों और उनके कृपापात्र अधिकारियों पर विश्वास नहीं कर बाहर से अपने चुनाव

के अधिकारी मौर अन्य राज्य-कर्मचारी राजस्थान में भेजने प्रारम्भ किये। साथ ही राजस्थानियों के शिक्षा-सम्बन्धी महत्वपूर्ण कार्यों को भी अंग्रेज शासको ने अपने विश्वासपात्र, गैर राजस्थानी अधिकारियों की देखरेख में विशेष साँचे में ढाल दिया, जिसमें मातृभाषा राजस्थानी का सर्वथा बहिष्कार कर दिया गया। राजस्थान की विभिन्न रियासतों का अधिकांश कार्य अब तक राजस्थानी भाषा में होता था, राजकीय कार्यवाही सम्बन्धी प्रचुर मात्रा में प्राप्त होने वाले पत्र इस कथन के प्रमाण के लिये पर्याप्त हैं। किन्तु राजस्थानी भाषा से सर्वथा अपरचित, बाहरी अधिकारियों के कारण राजस्थानी भाषा को धीरे-२ राजकाज से अपदस्थ होना पड़ा और जनता की कठिनाई बढ़ती गई।

राजस्थान में लेखन, भाषण एवं प्रचार-प्रकाशन सम्बन्धी कार्यों पर कड़े प्रतिबन्ध लगाये गये। इससे राजस्थानी भाषा के प्रकाशन में बड़ी बाधा उपस्थित हुई। राजस्थानी भाषा में पुस्तकें और पत्र आदि नहीं प्रकाशित हो सके। राजस्थानियों के शिक्षण में मातृभाषा राजस्थानी को कोई स्थान नहीं दिया गया। उत्कृष्ट राजस्थानी साहित्य का भी शिक्षण के क्षेत्र में सर्वथा बहिष्कार कर दिया गया। ऐसी अवस्था में नव शिक्षित व्यक्तियों और शेष राजस्थानी जनता के बीच बड़ी खाई पड़ गई तथा अंग्रेज शासको के लिये बाहरी अधिकारियों की सहायता से राजस्थानी जनता को दबाना सरल हो गया।

इतना होते हुए भी राजस्थानी जनता से सम्पर्क रखने वाले साहित्यकार राजस्थानी भाषा में बराबर लिखते रहे। इन साहित्यकारों को पूरी पूरी सफलता मिली। चारणों, कविरावों, मोतीसरो आदि ने तो राजस्थानी भाषा में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करना परम्परागत परम कर्तव्य समझा है। इस प्रकार राजस्थानी भाषा का विकास मन्द गति से, किन्तु बराबर होता रहा है।

www.rajteachers.com
भारतीय स्वाधीनता और राजस्थान प्रान्त के एकीकरण का कार्य प्रारम्भ होने पर राजस्थान के साहित्यकारों में नव-जीवन का संचार हो

गया है । राजस्थानी भाषा के प्रति अब राजस्थानियों का प्रेम धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रान्तीय और मातृभाषा राजस्थानी के महत्व के स्पष्टीकरणके साथ ही राजस्थानी भाषा का विकास भी तीव्रगति से होगा ।

आधुनिक राजस्थानी के कुछ नमूने इस प्रकार हैं—

आज घरे सासू कहै, हरक अचाणक काय ।
 घट्ट दलेवा हूलने, पूत मरेवा जाय ॥
 श्ला न देखी आपरी हालरियाँ हुलराय ।
 पूत सिखावे पालणे, मरण दड़ाई माय ॥

—महाकवि सूर्यमल (१८१६-१८६४ ई०)

रहँट फरे चख्यो फरै, पण फरवामें फेर ।
 वो तो वाड़ हरयो, वो झूतारो डेर ॥
 वाला वचे विरोध जी, करे फूकरया चाड़ ।
 वाचू तो भाटो भलो, रूपने भेटे राड़ ॥

—महाराज चतुरसिंह (१८७७-१९३० ई०)

रग-रग गड़ गयो रोग, दाम भावरो देममें ।
 निहचे करण विरोग, प्की माहित औपधि ॥
 राजनीतिरा रोगचू, पड़े विपद जद पूर ।
 दूर करे दुख देसरो, कै साहित कै चूर ॥

—उदयरज उज्ज्वल (१८८६ ई०, वर्तमान)

रण कर-कर रज-रज रँगे रिब ढँके रज हूंत ।
 रज जेती धर नहँ दिये, रज-रज रहे रजनूत ॥
 चाद उजाले एरु पख, वीजे पख अँधियार ।
 बल दुष्ट पखल उजालिया, चदमुखी बालहार ॥

—नाथूदान महियारिया (१८९२ ई०, वर्तमान)

राजस्थानी साहित्य में जको तेज पैली हो वो आज भी है, कूटै ई गयो कोनी । राज-स्थानरे आजरे कविमें भी वा ही प्रेतिभा, वो ही देगप्रेम, वो ही आत्माभिमान, वो ही तेज और वा ही आग भरी है । गांव-नांगमें आज भी श्मा कवि बैठा है । पण वे प्रकारमें कोनी आवै । गजस्थानीरो ओ नवो साहित्य प्रकारमें आम्बीज के दिन ममार देखयो के राजस्थानी साहित्यरो तेज कोई भाव घट्यो कोनी

—ठा० रामसिंह (१९०३, वर्तमान),

पीयन । के खिमता बादलरो,
जो रोकै सू उगालीनै ।
सिमारी हाथल मड लेवै,
वा कूख मली कद स्यालीनै ।
धरनोरो पाणो पिये, श्मो-
चातकरी चूच बणी कोनी,
कूकरो जूणा जियै, श्नी-
हाथीरी वात सुणी कोनी ।

आ हाथमें तरवार यका, कुण राउ केवै है राजसूती ?
म्यानारे बदलै बैरवारी द्यात्यामें रेवेली मूती !

—कन्हैयालाल सेठिया (वर्तमान)

सुण सखनाद गज चिनाइया,
हय होंस्या म्याना खिची खग ।
तइपी विजलो मी नम-नममें,
छेइयो वका विकरात जग ।
वण महाकात भिडग्या भैरव,
गरज्या आपममें ठोरु तात ।
भालाम् रेंची खाल-खाल,
तीराम् वींध्या बाल-बाल ।

लोही लुहाय चली कृपाण,
चनकीला धाटा लाल-लाल ।-

मद नत्त वीर धर उग्र रूप,
ढाटी तरवारा अझा ढाल ।

अम्बार पद्दया खा-खा पद्दाङ्क,-
ली भेंट म्बानी स्यडनाल ।

—मेघराज 'मुकुल' (वर्तमान)

राजस्थानी साहित्य में जको तेज पैली हो वो आज भी है, ऋट्टे ई गयो कोनी । राजस्थानरे आजरे कविमें भी वा ही प्रेतिभा, वो ही देशप्रेम, वो ही आत्मभिमान, वो ही तेज और वा ही आग भरी है । गाँव-गाँवमें आज भी श्मा ऋवि बैठा है । पण वे प्रकारमें कोनी आवै । राजस्थानीरो ओ नवो साहित्य प्रकारमें आयमीज के दिन ममार देखती के राजस्थानी साहित्यरो तेज केई भाव घञ्यो कोनी

—ठा० रामसिंह (१९०३, वर्तमान),

पोथन ! के खिमता बादलरो,
जो रोकै सूर उगालीनै ।
मियारी हाथल मह लेवै,
वा कूख मली कद स्यालीनै ।
धनोरो पाणो पिये, श्मी-
चातकरी चूच वणी कोनी,
कूकररी जूणा जियै, श्नी-
हाथीरी बात सुणी कोनी ।

आ हाथमें तरवार यका, कुण राट केवै है राजपूतो ?
म्यानारे वदलै वैरवारी द्यात्यामें रेनेली मूती ।

—कन्हैयालाल सेठिया (वर्तमान)

सुण संखनाद गज चित्राङ्ग्या,
हय होंस्या म्याना खिचो सग ।
तइपी विजणो मी नम-नममें,
छेइयो वंका विकरात जग ।
वण महाकात भिङ्ग्या भैरव,
गरज्या आपसमें ठोवतल ।
भालाम् खेंची खाल-खाल,

तीसरा अध्याय

राजस्थानी भाषा की विशेषताएँ

प्रत्येक भाषा की मौलिक विशेषताएँ होती हैं, जिनके आधार पर उसका स्वतंत्र अस्तित्व निर्भर रहता है। इन्हीं विशेषताओं के आधार पर किसी भाषा का विस्तार-क्षेत्र निश्चित कर प्रान्त अर्थात् शासन-सम्बन्धी इकाई का निर्माण किया जाता है। साथ ही इन विशेषताओं से सम्बन्धित जनता के इतिहास, नृत्व और विभिन्न जातियों से सम्पर्क आदि महत्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। इसलिये सार के समस्त उन्नत भागों में सम्बन्धित भाषाओं की जाच-पड़ताल, अध्ययन और प्रकाशन के सपूर्ण साधन सुलभ रहते हैं।

सर जार्ज ग्रियर्सन, डा० एल० पी० तेस्सितोरी और श्रीनुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के प्रारम्भिक प्रयत्नों के पश्चात् राजस्थानी भाषा-सम्बन्धी सपूर्ण जाच-पड़ताल, अध्ययन और प्रकाशन की सम्बन्धित जनता की उन्नति के लिये अनिवार्य आवश्यकता है। राजकीय एवं सार्वजनिक प्रयत्नों के अभाव में व्यक्तिगत प्रयत्न महत्वपूर्ण होता है, किन्तु इसके लिये सपूर्ण साधन जुटाना प्रायः असम्भव होता है। इसलिये इसके परिणाम पूर्ण रूपेण सन्तोषजनक नहीं हो सकते।

राजस्थानी भाषा पर राजस्थान की भौगोलिक विशेषताओं का प्रभाव होना स्वाभाविक ही है। राजस्थान भारतवर्ष का सबसे अधिक विस्तृत और विभिन्न प्रकार की भूमि एवं जलवायु वाला प्रान्त है। इसी एक प्रात में ऊँचे पहाड़, हरी-भरी घाटियाँ, सुविशाल झीलें, घने जंगल, उपजाऊ मैदान और विस्तृत मरुस्थल हैं। राजस्थान में कहीं वृषा नाम मात्र

की होती है और कही कुछ अधिक भी । इसी प्रकार राजस्थान के कुछ भाग ठंडे हैं, तो कुछ भाग गरम भी हैं । राजस्थान के पहाड़ों, हरी-भरी घाटियों, घने जंगलों और उपजाऊ मैदानों से सम्बन्धित जनता को जीवन-निर्वाह के सामान्य साधन उपलब्ध होते रहे हैं । इसलिये यहाँ के निवासियों को जीवन-निर्वाह के लिये बाहर जाने की आवश्यकता नहीं हुई है । साथ ही बाहर के लोगों का इन पहाड़ी और जंगली भागों में प्रवेश करना कठिन रहा है । इसलिये इन भागों में भारतीय आदिनिवासियों के वंशज बहुत अधिक सख्या में मिलते हैं, जिनकी मूल बोलिया राजस्थानी में अपनी विशेषताएँ थोड़ा कर अब प्रायः लुप्त हो गई हैं ।

राजस्थान के कम उपज वाले भागों से सम्बन्धित निवासियों को आजी-विका-निर्वाह और पशु-पालन के लिये दुष्काल पड़ने पर अथवा अन्य विशेष परिस्थितियों में समय-समय पर बाहर जाना पड़ा है । इसलिये राजस्थानी भाषा-भाषी लोग राजस्थान के बाहर भी बड़ी सख्या में मिलते हैं । राजस्थान के गूजरो ने पश्चिमी राजस्थान से दक्षिण में प्रवेश कर गुजरात जेमे प्रान्त की नींव रखी । इस प्रकार राजस्थानी भाषा का मेल विविध प्रकार को जनता और जन-भाषाओं से हुआ है ।

राजस्थान का बहुत प्राचीन काल से गुजरात, सिन्ध और पंजाब से घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा है । बाद में परिस्थितिवश दिल्ली और उत्तरप्रदेश से भी राजस्थान का राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित हुआ । इसलिये दिल्ली और उत्तरप्रदेश से आने वाले शासक-वर्ग एव सम्बन्धित लोगों ने अपनी भाषाओं एव बोलियों के द्वारा जन-भाषा राजस्थानी को और राजस्थानी जनता को अपने दबाव में रख कर अपना शासन एव प्रभाव जमाने की बराबर चेष्टा की है ।

भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिमी द्वार से समय-समय पर आने वाली विभिन्न जातियाँ पंजाब और सिन्ध की राह से आ कर राजस्थान में बसी हैं, तथा आगे बढ़ी हैं । गूजरो का उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है ।

राजस्थानी भाषा की स्थिति पर उपरोक्त सभी बातों का प्रभाव स्वाभाविक रूप में पडा है । राजस्थानी भाषा की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(क) उच्चारण सम्बन्धी विशेषताएँ

१—मूर्धन्य 'ष' के स्थान पर 'ख' उच्चरित होता है और राजस्थानी 'ख' 'ष' के समान ही 'प' को सिरेवन्दी की समानान्तर रेखा से काटते हुए लिखा जाता है । उदाहरण के लिये वखा (वर्षा), पखाण (पाषाण), मनख (मनुष्य), औखद (औषध), पुरख (पुरुष), और खट (षट) आदि शब्दों को लिया जा सकता है ।

२—'य' किसी शब्द का प्रथम अक्षर होता है तो 'य' का उच्चारण 'ज' की भाँति होता है । जैसे—जोधा (यौद्धा), जात्रा (यात्रा), जुगत (युक्ति), जुग (युग) और जम (यम) आदि ।

३—'न' के स्थान पर प्रायः 'ण' का उच्चारण । जैसे—चमकणा (चमकना), कण (कन), मण (मन), पाणी (पानी), जण (जन), दूण (दूना) और अजाण (अजान) आदि ।

४—'ल' अर्थात् 'ल' का मूर्धन्य उच्चारण । यह प्राचीन ध्वनि राजस्थानी के अतिरिक्त गुजराती, पंजाबी, मराठी, सिन्धी, लहन्दा आदि भाषाओं में भी मिलती है । राजस्थानी में 'ल' के स्थान पर 'ल' का प्रयोग करने से शब्दार्थ में अन्तर भी हो जाता है । जैसे—गाल = दुर्वचन और गाल = कपोल, भाल = खोज और भाल = ललाट, वाल = दया और वाल = बालक तथा गोल = गुड और गोल = वृत्ताकार आदि ।

५—'व' का संस्कृत 'व' और अंग्रेजी 'w' के उच्चारण के अतिरिक्त अंग्रेजी 'v' का उच्चारण भी होता है । ऐसी अवस्था में 'व' के नीचे विन्दी लगा कर 'व' कर दिया जाता है । ऐसा नहीं करने पर शब्दार्थ में अन्तर हो जाता है । जैसे—वात = हवा और वात = वार्ता,

कहानी, वार=दिन और वार=जोर की आवाज तथा वीर=वहादुर और वीर=वीरोन्माद ।

६-‘च’ और ‘छ’ आदि तालव्य ध्वनियों के ‘स’ में ढलते हुए उच्चारण के लिये ‘च’ और ‘छ’ आदि के नीचे विन्दी का प्रयोग उचित होता है । जैसे-वचार (विचार), छोरो (लडका) और चारो (घास) आदि ।

७-अ-कार के स्यान पर इ-कार का उच्चारण । जैसे-पिठान (पठान) सिरदार (सरदार), पिंडत (पण्डित), हिरण (हरिण) और मिनख (मनुष्य) आदि ।

८-इ-कार के स्यान पर अ-कार का उच्चारण । जैसे-दन (दिन), कनार (किनार), परणवो (परिणय), दल्ली (दिल्ली) आदि ।

९-कही-कहीं उच्चारण में अन्त की ध्वनि लुप्त हो जाती है । जैसे-वाँ (वाँह, वाहु), पाँ (पास), हाँ (सास) और काँ (कहे) आदि ।

१०-‘च’, ‘क्ष’, ‘ढ’ और ‘भ’ अघोष वर्णों का विशेष उच्चारण, इनमें ह-कार की विकृति । यह राजस्थानी के अतिरिक्त लहँदा, पूर्वी पजाबी, सिन्धी, गुजराती और पूर्वी बंगला में भी मिलती है, किन्तु खड़ी बोली, कौशली, विहारी, भोजपुरी, आदि में नहीं मिलती । जैसे-व्हेण-भैण (बहिन), व्हारणे (वाहर), क्हो (कहो) आदि ।

१-उच्चारण में वर्ण विशेष पर बल दिया जाता है । ऐसा नहीं करने पर शब्दार्थ में अन्तर हो जाता है । जैसे-नार=स्त्री और ना'र=सिंह, नाथ=स्वामी और ना'थ=वधन, घर के बँटवारे के लिये खड़ी की गई दीवार, पीर=मुस्लिम धर्म-गुरु और पी'र=पीहर आदि ।

(ख) व्याकरण-सम्बन्धी विशेषताएँ

-कारक और विभक्ति-

‘ए’ विभक्ति सभी कारको में पुल्लिंग एक वचन के साथ लागती है । बहुवचन में बहुधा ‘आँ’ या ‘याँ’ या ‘हाँ’ और पुल्लिंग एक वचन में ‘आ’ लगता है । मुख्य विभक्तियाँ इस प्रकार हैं-

कारक	विभक्तिचिह्न	उदाहरण
कर्ता, प्रथमा ।	इ, उ आदि ।	राणइ, डोलउ ।
कर्म, द्वितीया ।	इ, उ, इए आदि ।	भुयगि, कलेजउ, सखिए ।
करण, तृतीया ।	इ, ए, ती आदि ।	तनि, खगे, मुखती ।
संप्रदान, चतुर्थी ।	ए, नूं, आं आदि ।	घरे, मननूं, तनां ।
अपादान, पञ्चमी ।	हूं, हुंता, अइ आदि ।	तनहूं, मुखहुंता, हीयइ ।
सम्बन्ध, षष्ठी ।	हाँ, रो, तणो, हन्दो आदि ।	करहाँ, रणरो, जग तणो, घरहन्दो ।
अधिकरण, सप्तमी ।	इ, ए आदि ।	पगि, घरे ।

२-सर्वनाम-

राजस्थानी सर्वनाम शब्दों के रूप बहुधा अपभ्रंश का अनुसरण करते हैं ।

(अ) हू (मैं) के कुछ रूप इस प्रकार हैं-

हूं, म्हे, मइँ (कर्ता) ।

हूं, मूं, मूझ (कर्म) ।

माहरो, अम्हीणो, म्हारउ आदि (सम्बन्ध) ।

अम्हा (अधिकरण) ।

(आ) तूं (तू) के कुछ रूप इस प्रकार हैं-

तुम्ह, तुम्हाँ (कर्ता) ।

तुम्ह, तुम्हां (कर्म) ।

तुम्हात्तूं, थांसू (करण) ।

ताहरो, थारो, तुम्हीणो (अधिकरण) ।

(इ) ओ (यह) के कुछ रूप इस प्रकार हैं-

एह, ए, इणां, यां (कर्ता) ।

इण, इणानं, इणानं, यानं, थानं (कर्म) ।

एणइ, इणइ, इणि (करण) ।

एहं, इहं, अहाँ (सम्प्रदान) ।

इणरा, ईरा, इणारा, आंरा, यांरा (सम्बन्ध) ।

(ई) वो, सो (वह) के कुछ रूप इस प्रकार हैं—

उणां, वां, तिके, तिणां, सो (कर्ता) ।

उण, त्यां, ता, उवां, तांह, तिणानै (कर्म) ।

तिणइ, तेहि, तेइ (करण) ।

तउ, तिह, तिम्र (सम्प्रदान) ।

उणरौ, वणारौ, तिणरा, तांहका, तिणारा, वांरा (सम्बन्ध) ।

(उ) जो, जिको (जो) के कुछ रूप इस प्रकार हैं—

जिको, जिका, जिकां, जु, जः (कर्ता) ।

जिण, जिणां, जां, ज्यां, जिणानै (कर्म) ।

जिणरा, जिणरौ, जिणारौ, ज्यांकौ, जांकौ (सम्बन्ध) ।

(ऊ) कुण (कौन) के कुछ रूप इस प्रकार हैं—

कुण, कउण, कवण, किणां (कर्ता) ।

किणनै, किण, कीनै, किणानै (कर्म) ।

कउणइ, कुणइ, कुणि, किणि (करण) ।

कीरा, किणरा, किणारा, कणरा (सम्बन्ध) ।

(ए) 'आप' के कुछ रूप इस प्रकार हैं—

आप, आपां (कर्ता) ।

आपनै, आपानै (कर्म) ।

आपइ, आपणइ (करण) ।

आपरौ, आपाणो (सम्बन्ध) ।

३-क्रिया—

(अ) वर्तमान काल बहुवा मूल क्रिया के पीछे 'हैं' विभक्ति लगा कर

व्यक्त किया जाता है । 'हैं' के स्थान पर 'छैं' का प्रयोग केवल

'जंपुरी' और 'हाडौती' में रहता है । मूल क्रिया में 'हैं' को

'ऐ' विभक्ति लगा कर भी वर्तमान काल व्यक्त किया जाता है ।

जैसे—भरइ, पलटइ, वसइ, रोकै, लोपै, मखै आदि ।

- (आ) भूतकाल क्रिया के रूप सम्बन्धित सज्ञा अथवा सर्वनाम शब्दों के अनुसार बहुधा एकवचन में आकारान्त और बहुवचन में आकारान्त होते हैं। जैसे—भागौ, भागियौ (एक वचन), भागा, भागिया (बहुवचन) आदि। सामान्य भूतकाल के लिये मूल क्रिया के अन्त में 'इउ', 'यऊ', और 'इउ' जोड़े जाते हैं। जैसे—कहियउ, उडियउ, कहिउ, उडिउ, परणिउ आदि।
- (इ) भविष्यत काल क्रिया के रूप अधिकांश में 'ला', 'ली', 'लौ' प्रत्यय लगा कर बनाये जाते हैं। जैसे—जावेला, जावेली, जावेलौ, खावेला, खावेली, खावेलौ आदि। कहीर 'स्यौ', 'मी', 'स्यूं' और 'गा', 'गी', का प्रयोग भी होता है। जैसे—जास्यां, जासी, जास्यूं और जावूंगा, जावांगा, जावेगी आदि।
- (ई) पूर्वकालिक क्रियाओं के अन्त में 'अ', 'र', 'एवि', 'नै' और 'ह' आदि प्रत्ययों का प्रयोग होता है। जैसे—जाणिअ, जाणर, जाणेवि, जाणनै, जाणेह आदि।
- (उ) आज्ञार्थक क्रियाओं के अन्त में 'वै' और 'जै' का प्रयोग होता है। जैसे—फरमावै, दिरावै, फरमावजै, दिरावजै आदि।

४-विशेषण-

राजस्थानी विशेषण के लिंग, वचन और कारक विशेष्य के लिंग, वचन और कारक का ही अनुसरण करते हैं। पुल्लिंग सूचक विशेषण बहुधा आकारान्त, ओकारान्त और स्त्रीलिंग सूचक विशेषण बहुधा इकारान्त होते हैं। गुजराती के सख्या-वाचक शब्द भी राजस्थानी से मिलते हुए हैं। जैसे—बारा (बारह), तेरा (तेरह), पन्द्रा (पन्द्रह), सोला (सोलह), सतरा (सतरह) आदि।

(ग) शब्द-कोश-सम्बन्धी विशेषज्ञाएं

राजस्थानियों का सम्पर्क कई विभिन्न जातियों एवं सस्कृतियों से रहा है। इसलिये राजस्थानी में सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश शब्दावली के अतिरिक्त

कुछ द्रविड, अरबी, फारसी, अंग्रेजी, फ्रेञ्च आदि भाषाओं के शब्द भी तद्भव रूप में मिल गये हैं, किन्तु इनकी सख्या अन्य शब्दों की अपेक्षा बहुत कम है । राजस्थानी भाषा के कई शब्द मूलतः राजस्थान प्रान्तीय हैं, जिनके पर्याय अन्य भाषाओं में नहीं मिलते । यदि खड़ी बोली बोलने वाले किसी व्यक्ति से राजस्थानी भाषा-भाषी की तुलना की जाय तो ज्ञात होगा कि राजस्थानी शब्दावली में कई गुने अधिक संस्कृत शब्द हैं और मूल राजस्थानी शब्दावली के कारण उसकी मौलिकता स्पष्ट प्रमाणित होगी । राजस्थानी में पर्यायवाची शब्दों की भी भरमार है । शब्द-शक्ति की दृष्टि से भी राजस्थानी एक महान् भाषा है । कुछ राजस्थानी शब्दों के रूप इस प्रकार हैं—

१—प्राचीन भारतीय आर्य भाषा वर्ग (संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश) से सम्बन्धित कुछ शब्द इस प्रकार हैं— अपहर (सं० अपहरा), ओलवो (सं० उपालम्भ), कुण (अप० कण), केवाण (सं० कृपाण), खिण (अप० खण, सं० क्षण), दिणअर (सं० दिनकर), पिसण (सं० पिशुन), महर (सं० मत्सर), मुनाण (अप० मसाण, सं० श्मशान), सगला (प्रा० सगल), सदेसडो (प्रा० नदेसडठ) आदि ।

२—मुस्लिम वर्ग (अरबी, फारसी, और तुर्की) से सम्बन्धित कुछ शब्द इस प्रकार हैं— अरज्ज (अ० अर्ज), अजव (अ० अजीव), इनाम (अ०), काफर (अ० काफिर), कागल, कागद (अ० कागज), कुसामद (फा० खुशामद), गरकाव (अ०), गोलो (अ० गुलाम), तोप (तु०), पतसाह (फा० पादशाह), वगतर (फा० वस्तर), हूनर (फा०) आदि ।

३—यूरोपीय भाषाओं से सम्बन्धित कुछ शब्द — अजण (एजिन), कोरट (कोर्ट), टिगस (टिकिट), टेसण (स्टेशन), वक (बैंक), मनीयाडर (मनि आर्डर), सनीमो (सिनेमा) आदि ।

४—प्रान्तीय वर्ग अर्थात् राजस्थानी भाषा के शब्दों के लिए इन प्रकार हैं — आटी (चोटी, वेणी), गडक, गडकडो (कुत्ता), जीमणो (दाहिना), टावर (बच्चा) डोलो (पति) नाणो (रूपया) पणी

(कीर्ति), भाटो (पत्थर), मगरो (पहाड), लुगाई (स्त्री) और हेलो (पुकार) आदि ।

(घ) लिपि सम्बन्धी विशेषताएँ

नागरी लिपि राजस्थानी भाषा की अपनी मूल लिपि है । अपनी महत्ता और श्रेष्ठता के कारण इसका व्यवहार सस्कृत, मराठी, ब्रज, अरवधी, खड़ी बोली आदि के लिये भी होता रहा है । अब नागरी लिपि को भारत की राष्ट्रीय लिपि के रूप में मान्य किया गया है, इसलिये अन्य भाषाओं के लिये भी इसका प्रचार बढ़ता जा रहा है ।

'नागरी' की उत्पत्ति भारतवर्ष की प्राचीन लिपि 'ब्राह्मी' से हुई है । 'ब्राह्मी' के विभिन्न रूप ५०० ई० पू० से ३५० ई० तक प्राप्त होते हैं और इस समय की समस्त भारतीय लिपियों की सजा 'ब्राह्मी' मानी गई है । ३५० ई० के पश्चात् 'ब्राह्मी' का प्रवाह उत्तरी और दक्षिणी, दो भागों में विभक्त हो जाता है । दक्षिण भारत में ब्राह्मी के दक्षिणी रूपों का विकास हुआ और उत्तरी भारत में उत्तरी रूपों का । उत्तरी शैली में 'नागरी' मुख्य है, जिसका प्रचार आठवीं शताब्दी से मिलता है ।^१

'नागरी' के नामकरण के विषयमें बहुत मतभेद रहा है । इसका सम्बन्ध नागरिक अथवा नगर, नागर ब्राह्मण और त्रिकोण एव चक्रों से बने हुए उपासना यत्र 'देव नगर' आदि से जोड़ा जाता है ।^२

मेवाड में उदयपुर के समीप प्राप्त होने वाले अपभ्रंशकालीन सुसम्पन्न नगर नागदा (नागद्रहा) के खण्डहरो से, मारवाड के नागौर (अहि-छत्रपुर) की प्राचीन महत्ता से, नाग और नागदा जाति के महत्त्व से और इसी प्रकार के अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों से राजस्थान में 'नाग' जाति के

१—गौरीशंकरजी हीराचंदजी ओझा, भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ० ४२ ।

२—वही, पृ० ३० और देवनागरी लिपि की उत्पत्ति विषयक आर्जेंटायन एन्टिक्वेरी (Indian Antiquary) जिन ३५, पृ० २५३-६७, २७०-७० और ३११-२४ ।

प्रभुत्व का पता लगता है। राजस्थान से सम्बन्धित भाषा अपभ्रंश का नामकरण 'नागर अपभ्रंश' और लिपि का नामकरण 'नागरी' वास्तव में 'नाग' के आघार पर किया गया है। राजस्थान में 'र', 'रा', 'री' आदि विभक्तियाँ 'का', 'की' आदि के सम्बन्ध-बोधक अर्थ में प्रयुक्त होती रहीं हैं। इस प्रकार नागर अपभ्रंश का अर्थ होता है— नाग लोगों की अपभ्रंश और 'नागरी लिपि' का अर्थ होता है 'नागर अपभ्रंश' की लिपि अथवा नाग लोगों की लिपि। स्पष्ट किया जा चुका है कि छठी सदी के आसपास विकसित राजस्थानीय लोक भाषा 'नागर अपभ्रंश' और इसकी एक मात्र उत्तराधिकारिणी 'राजस्थानी' का १६वीं सदी तक भारतवर्ष में प्रभुत्व था। इस काल में नागर अपभ्रंश एव राजस्थानी में जितना अधिक लेखन-कार्य हुआ, वैसा किसी अन्य भाषा में नहीं हुआ। नागरी लिपि में लिखित प्राचीनतम हस्तलिखित ग्रन्थ, शिलालेख, ताम्रपत्र आदि भी मुख्यतः इन्हीं भाषाओं में और इनसे सम्बन्धित क्षेत्र में ही प्राप्त होते हैं। इस प्रकार 'नागरी' लिपि को 'राजस्थानी' लिपि भी कह सकते हैं।

उत्तर मध्यकाल में 'राजस्थानी' के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में भी साहित्य-रचना होने लगी तो बंगाली, गुजराती और पंजाबी आदि के लिये 'नागरी' लिपि से मिलते हुए और इसके आघार पर प्रचलित रूप बंगाली, गुजराती, गुरुमुखी आदि अपनाए गये। शेष भाषाओं ने नागरी लिपि को ही अपना लिया, जिनमें मराठी, ब्रज, अवधी और उर्दू आदि हैं। 'उर्दू' को नागरी लिपि में व्यक्त कर हिन्दी कहा जाने लगा है, जिसके विषय में आगे प्रकाश डाला जावेगा।

ब्रिटिश शासनकाल में राजस्थान में प्रेसों और प्रकाशन सम्बन्धी कार्यों पर कड़े प्रतिबन्ध लगा दिये गये, जिसका परिणाम यह हुआ कि राजस्थानी अर्थात् मूल नागरी लिपि का मूल प्रकार से विकास और प्रकाशन नहीं हो सका। इसमें उर्दू के लिये अपनाई गई अष्ट नागरी राजस्थान में प्रचलित होने लगी है। अष्ट नागरी और मूल राजस्थानी नागरी में अन्तर है, जो

राजस्थानी लिखावट में, मुख्यत 'ख', 'ग', 'ङ', 'छ', 'झ', 'ल', तथा विभिन्न अको में स्पष्ट देखा जा सकता है ।

राजस्थानी भाषा के समुचित विकास के लिये अब उर्दू के लिये प्रचलित नागरी लिपि में उचित सुधार करना और उसको मुद्रण, अकण, शीघ्र-लेखन आदि के लिये अपनाना बहुत आवश्यक हो गया है ।

(ड) साहित्य-सम्बन्धी विशेषताएँ

साहित्यिक दृष्टि से राजस्थानी भाषा की गणना भारतवर्ष में दो तीन प्रमुख साहित्यसम्पन्न भाषाओं में की जानी चाहिये । क्योंकि प्राचीन साहित्य की दृष्टि से राजस्थानी भाषा बहुत सम्पन्न है । ब्रिटिश शासनकाल की राजस्थानी जनता की दुहरी पराधीनता एवं प्रकाशन सम्बन्धी कार्यों पर लगे हुए कड़े प्रतिबन्धों के कारण राजस्थानी भाषा का नवीन साहित्य अपेक्षाकृत कम प्रकाश में आया है । किन्तु भारतीय स्वाधीनता एवं राजस्थानी एकीकरण के उपरांत उत्पन्न हुई नवीन जागृति को देखते हुए आशा है कि उक्त कमी शीघ्र ही पूरी हो जावेगी । राजस्थानी भाषा का साहित्य निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१- जैन साहित्य -

राजस्थानी जैन साहित्य प्रबन्ध, कथा, रास, चौपाई, फाग, सम्वाद, गीत, धमाल, दूहा, गजल, स्तवन, सज्जाय, पट्टावली आदि के रूप में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। प्राचीन राजस्थानी गद्य भी मुख्यत जैन साहित्यकारों द्वारा लिखा गया है । जैन साधु-साध्वियों और यतियों ने धार्मिक, वैद्यक, कोष, मन्त्र, नगर-वर्णन, इतिहास आदि से सम्बन्धित बहुत उपयोगी साहित्य की रचना और रक्षा कर जन भाषा राजस्थानी को सम्पन्न करने में योग दिया है । इन साहित्यकारों की रचनाओं में शालिभद्रसूरि का भारत वाहुवली रास (स० ११८६), कुशललाम की बोला-माहू चौपाई और माधवानल कामकन्दला (१६ वीं सदी), समय सुन्दर (स० १५८०-१६४२) की सीताराम चौपाई, जीतमलजी का भगवती सूत्र

आदि उल्लेखनीय हैं। आज भी अधिकांश जैन-साहित्यकार राजस्थानी भाषा को अपनाए हुए हैं।

२-पिंगल साहित्य -

पिंगल का अर्थ शूरसेनी अथवा व्रज प्रभावित राजस्थानी मानना चाहिये। प्राचीन परंपरागत विविध प्रकार के छन्दों में राजस्थानी वीरता का चित्रण इसकी प्रधान विशेषता है। राजस्थान के कविरावो (भट्टो) और कुल्लु सन्तो का झुकाव पिंगल की ओर रहा है। दलपत का खुमाण रासा, महाकवि चंद का पृथ्वीराज रासा, नरहरिदास (स० १६४८-१७३३) का अवतार चरित्र, मान कवि का राजविलास (स० १७३८) और महाकवि सूरजमलजी (वि० स० १८७२-१९२०) का वशभास्कर आदि पिंगल की प्रमुख रचनाएँ हैं।

३-डिंगल साहित्य -

डिंगल राजस्थानी साहित्य की एक विशेष शैली है, जिसका आधार मुख्यतः पश्चिमी राजस्थानी है। इस शैली को राजस्थान के समस्त विभागों के साहित्यकारों ने, जिनमें चारण मुख्य है, अपनाया है। डिंगल में कई अवन्तकाव्यों के अतिरिक्त लाखों दूहों और गीतों की रचना हुई है। राजस्थानी दूहे राजस्थानी समाज में प्राणों की तरह व्याप्त हैं और मौखिक रूप में भी प्राप्त किये जा सकते हैं। इन दूहों और गीतों की उच्चारण-शैली बड़ी प्रभावशाली होती है। यह अब लुप्त होती जा रही है। डिंगल कवियों में दुरसाजी आढ़ा (वि० स० १५९२-१७१२), ईसरदासजी (वि० स० १५९५-१६७६), महाराज पृथ्वीराज (वि० स० १६०६-१६५७), वाकीदासजी (वि० स० १८२८-१८९०), महाकवि सूरजमलजी (वि० स० १८७२-१९२०), केसरीसिंहजी वारहठ, कोटा, (वि० स० १९२९-१९९८), उदरराजजी ऊजल (वर्तमान) और जयसूरजजी महियारिया (वर्तमान) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। नवीन डिंगल सुबोध

४-पौराणिक साहित्य -

राजस्थानी साहित्यकारों ने राजस्थानी जनता के लिये पौराणिक साहित्य को भी राजस्थानी भाषा में प्रस्तुत किया है। इस कार्य में मुख्यतः ब्राह्मणों का हाथ रहा है। रामायण और महाभारत से सम्बन्धित बहुत सी रचनाएँ राजस्थानी में प्रस्तुत की गई हैं। साथ ही नासकेत पुराण, मार्कण्डेय पुराण, सूरज पुराण, पदम पुराण जैसे ग्रन्थ भी राजस्थानी में प्रस्तुत किये गये हैं। इनमें अनुवाद, टीका आदि के लिये गद्य का प्रचुर मात्रा में व्यवहार हुआ है।

५-भक्ति साहित्य-

राजस्थान बहुत प्राचीन काल से विविध प्रकार के भक्तों और सम्प्रदायों का केन्द्र रहा है। नाथ, दादू, रामसनेही, निरञ्जनी आदि सम्प्रदायों की राजस्थान जन्मभूमि है। भक्तों द्वारा राजस्थानी भाषा में रचित भजन, वाणी, डूहे आदि जनता में बहुत लोकप्रिय हुए हैं और राजस्थान के बाहर भी इनका बहुत प्रचार हुआ है। भक्ति साहित्य में मीराँ-पदावली का स्थान सर्वोपरि है और इस कारण मीराँ को अखिल भारतीय लोकप्रियता प्राप्त हुई है। दादू, रैदास, जसनाथ, आदि की रचनाएँ भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। महाराज चतुरसिंह (वि० स० १९३३-१९५६) की रचनाओं का सम्बन्धित जनता में बहुत प्रचार और आदर है।

६-लोक साहित्य -

राजस्थान के विविध प्रकार के प्राकृतिक वातावरण और परिस्थितियों में निर्मित लोक गीतों, लोक वार्ताओं, कहावतों, मुहावरों, लोक कथाकाव्यों और ख्यालों के रूप में मौखिक साहित्य भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। इनके विधिवत् सकलन और प्रकाशन से राजस्थानी भाषा का भण्डार भरपूर हो सकता है। लोकगीतों में विविध त्योहारों, देवी देवताओं और मांगलिक अवसरों के गीत मुख्य हैं। लोक वार्ताएँ भी विविधताओं से पूर्ण हैं और श्रोताओं को चमत्कृत करने में पूर्ण रूपेण समर्थ हैं। लोक कथा-

काव्यों में नरसीजीरो माहेरो, रुक्मणी मगल, डूंगजी-जवारजी, पावूजी, तेजोजी, वगडावत, नागजी आदि मुख्य हैं। इनमें काव्यत्व के साथ राजस्थानी सस्कृति के सजीव दर्शन होते हैं। अमरसिंघ राठौड, गोपीचद भरथरी, राजा हरिचद आदि राजस्थानी स्याल भी बहुते उत्साह से खेले जाते हैं।

७—नवीन साहित्य —

प्राचीन साहित्यिक परम्परा का पालन करने वाले चारणो, कविरावो और मन्तो के अतिरिक्त कई नव शिक्षित व्यक्ति राजस्थानी भाषा में साहित्य-रचना करने के लिये प्रयत्नशील रहे हैं। इन्होंने गद्य और पद्य, दोनों का प्रयोग किया है। शिवचद भरतिया, रामकर्ण आसोपा, गुलावचद नागोरी, मुरलोघर व्यास आदि ने नवीन राजस्थानी गद्य का निर्माण किया है। नवीन राजस्थानी कविता में कन्हैयालाल सेठिया की विविध रचनाएँ, कु० चन्द्रसिंह के राजस्थानी प्रकृति चित्रण सम्बन्धी काव्य, मेघराज 'भुकुल' की सेनाणी, लौरी, और कोडमदे, ज्ञानू राम सस्कृती की कलायण और रैवतदान चारण की ओजस्वी रचनाएँ बहुते महत्वपूर्ण हैं। अभी २ राजस्थान के कई साहित्यकारो का ध्यान राजस्थानी भाषा में विविध उपयोगी साहित्य और अनुवाद आदि प्रस्तुत करने की ओर विशेष रूप में गया है। विश्वास है कि निकट भविष्य में ही इसका शुभ परिणाम हमारे सामने आवेगा।

४-पौराणिक साहित्य -

राजस्थानी साहित्यकारों ने राजस्थानी जनता के लिये पौराणिक साहित्य को भी राजस्थानी भाषा में प्रस्तुत किया है। इस कार्य में मुख्यतः ब्राह्मणों का हाथ रहा है। रामायण और महाभारत से सम्बन्धित बहुत सी रचनाएँ राजस्थानी में प्रस्तुत की गई हैं। साथ ही नासकेत पुराण, मार्कण्डेय पुराण, सूरज पुराण, पदम पुराण जैसे ग्रन्थ भी राजस्थानी में प्रस्तुत किये गये हैं। इनमें अनुवाद, टीका आदि के लिये गद्य का प्रचुर मात्रा में व्यवहार हुआ है।

५-भक्ति साहित्य-

राजस्थान बहुत प्राचीन काल से विविध प्रकार के भक्तों और सम्प्रदायों का केन्द्र रहा है। नाथ, दादू, रामसनेही, निरञ्जनी आदि सम्प्रदायों की राजस्थान जन्मभूमि है। भक्तों द्वारा राजस्थानी भाषा में रचित भजन, वाणी, दूहे आदि जनता में बहुत लोकप्रिय हुए हैं और राजस्थान के बाहर भी इनका बहुत प्रचार हुआ है। भक्ति साहित्य में मीराँ-पदावली का स्थान सर्वोपरि है और इस कारण मीराँ को अखिल भारतीय लोकप्रियता प्राप्त हुई है। दादू, रैदास, जसनाथ, आदि की रचनाएँ भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। महाराज चतुरसिंह (वि० स० १९३३-१९८६) की रचनाओं का सम्बन्धित जनता में बहुत प्रचार और आदर है।

६-लोक साहित्य -

राजस्थान के विविध प्रकार के प्राकृतिक वातावरण और परिस्थितियों में निर्मित लोक गीतों, लोक वार्ताओं, कहावतों, मुहावरों, लोक कथाकाव्यों और ख्यालों के रूप में मौखिक साहित्य भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। इनके विधिवत् सकलन और प्रकाशन से राजस्थानी भाषा का भण्डार भरपूर हो सकता है। लोकगीतों में विविध न्यौहारों, देवी देवताओं और मागलिक अवसरों के गीत मुख्य हैं। लोक वार्ताएँ भी विविधताओं से पूर्ण हैं और श्रोताओं को चमत्कृत करने में पूर्ण रूपेण समर्थ हैं। लोक कथा-

काव्यो में नरसीजीरो माहेरो, रुक्मणी मगल, डूंगजी-जवारजी, पावूजी, तेजोजी, वगडावत, नागजी आदि मुख्य हैं। इनमें काव्यत्व के साथ राजस्थानी सस्कृति के सजीव दर्शन होते हैं। अमरनिघ राठौड, गोपीचद भरथरी, राजा हरिचद आदि राजस्थानी ख्याल भी बहुत उत्साह से खेले जाते हैं।

७-नवीन साहित्य -

प्राचीन साहित्यिक परम्परा का पालन करने वाले चारणो, कविरावों और सन्नों के अतिरिक्त कई नव शिक्षित व्यक्ति राजस्थानी भाषा में साहित्य-रचना करने के लिये प्रयत्नशील रहे हैं। इन्होंने गद्य और पद्य, दोनों का प्रयोग किया है। शिवचद भरतिया, रामकर्ण आमोपा, गुलाबचद नागोरी, मुरलीधर व्यास आदि ने नवीन राजस्थानी गद्य का निर्माण किया है। नवीन राजस्थानी कविता में कन्हैयालाल सेठिया की विविध रचनाएँ, कु० चन्द्रसिंह के राजस्थानी प्रकृति चित्रण सस्त्रन्धी काव्य, मेघराज 'मुकुल' की सेनाणी, लौरी, और कोडमदे, ज्ञानू राम सस्कृती की कलायण और रैवत-दान चारण की ओजस्वी रचनाएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। अभी २ राजस्थान के कई साहित्यकारो का ध्यान राजस्थानी भाषा में विविध उपयोगी साहित्य और अनुवाद आदि प्रस्तुत करने की ओर विशेष रूप में गया है। विश्वास है कि निकट भविष्य में ही इसका शुभ परिणाम हमारे सामने आवेगा।

चौथा अध्याय

राजस्थानी ही क्यों ?

पिछले अध्यायों में राजस्थानी भाषा के प्रारंभिक परिचय, राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति और विकास तथा राजस्थानी भाषा की विशेषताओं पर यथा तथ्य निरूपण किया गया है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि 'राजस्थानी' हमारे भारत की एक स्वतंत्र एवं सम्पन्न भाषा है। अब तक किसी भी अधिकारी विद्वान् और सम्बन्धित विषय का थोड़ा-बहुत ज्ञान रखने वाले व्यक्ति ने इसका विरोध नहीं किया है।

(क) विशेषज्ञों के वक्तव्य

राजस्थानी भाषा के सम्बन्ध में निष्पक्ष और अधिकारी विद्वानों द्वारा दिये गये कुछ सुप्रमाणित वक्तव्य इस प्रकार हैं—

१—राजस्थानी स्वतंत्र भाषा है—

राजस्थानी बोलिया अपने आप मिल कर एक ऐसा वर्ग बनाती है जो एक ओर पश्चिमी हिन्दी तथा दूसरी ओर गुजराती से भिन्न है। वे मिल कर 'स्वतंत्र भाषा' मानी जाने की अधिकारिणी है। पश्चिमी हिन्दी से वे पंजाबी से भी अधिक दूर हैं। किसी भी स्थिति में वे पश्चिमी हिन्दी की बोलियों की भाँति वर्गीकृत नहीं की जा सकती।¹

—श्रीयुत् डाँ जार्ज प्रियर्सन।

२—राजस्थानी का हिन्दी से मेल नहीं है—

राजस्थानी (मारवाड़ी-गुजराती) के उच्चारण की एक खास बात यह है, इस मामले में मारवाड़ी-गुजराती का मेल पश्चिमी पंजाबी से

१—भारतीय भाषाओं का जाँच पड़ताल (Linguistic Survey of India)

खण्ड-६, भाग-२, पृष्ठ-११।

है, कुछ-कुछ सिंधी से भी हैं, पर मध्य-देश की बोली (हिन्दी) से नहीं है ।^१

—श्रीयुत् डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ।

३—व्याकरण की दृष्टि से राजस्थानी—

संज्ञाओं के कारक रूपों में यह (राजस्थानी) गुजराती से बहुत मिलती है, पश्चिमी हिन्दी से नहीं । राजस्थानी की विभक्तियाँ अलग ही हैं । जहाँ कहीं नमानता है, वहाँ गुजराती से अधिक है, पश्चिमी हिन्दी से कम^१ ।

—श्रीयुत् डॉ० श्यामसुन्दरदास ।

४—राजस्थानी राजभाषा भी होनी चाहिये—

हिन्दी राजस्थान की मातृभाषा नहीं है और न प्रवाने भाषा ही है । राजस्थानी ही आज हमारे व्यक्तित्व को अपने वास्तविक रूप में व्यक्त कर सकती है । राजस्थानी हमारी प्रादेशिक तथा मातृभाषा है और इस नाते राजस्थानी हमारी राजभाषा भी होनी चाहिये^१ ।

—श्रीयुत् पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजयजी ।

(ख) पराधीनता का परिणाम ?

ब्रिटिश-पराधीनता के काल में राजस्थानी भाषा को बंगाली, गुजराती और मराठी आदि अन्य भाषाओं की भाँति समुचित रूप में विकसित होने का अवसर नहीं प्राप्त हो सका, इसके कई कारण हैं ।

यह भली प्रकार से स्पष्ट हो चुका है कि राजस्थानी वीरों ने भारतीय स्वाधीनता और उत्कर्ष के लिये राजस्थानी साहित्य, राजस्थानी संस्कृति एवं इनकी मूलाधार राजस्थानी भाषा से ही प्रेरणा प्राप्त कर अन्त तक विदेशी आक्रान्ताओं का सामना किया है । राजस्थानी भारतीय अर्थ

१—राजस्थानी भाषा पर महाकवि सूर्यनल आस्तन सायण, पृ० ४८ ।

का स्रोत रहा है और राजस्थानी भाषा एवं सस्कृति की अवहेलना कर राजस्थान ही नहीं वरन् समस्त भारतीय शक्ति को क्षीण किया गया है । अंग्रेज शासको ने राजस्थानी वीरो की शक्ति को भली प्रकार से परख लिया था । उन्होंने समझ लिया था कि वीर राजस्थानियो पर शासन करना और इनसे बच कर भारतीय वसुन्धरा का भोग करना अत्यन्त कठिन है । इसलिये राजस्थान के साथ अंग्रेज-शासको ने विशेष नीति का अनुसरण किया ।

अंग्रेज शासक चाहते तो राजस्थान को भी बंगाल, बिहार, गुजरात और पंजाब की भाँति सयुक्त कर सीधा ही अपने शासन में ले सकते थे । किन्तु वे राजस्थानी जनता की अद्वितीय देश-भक्ति और अदम्य वीरता के कारण ऐसा करने का साहस नहीं कर सके । अंग्रेज शासको ने राजस्थानी राजाओं को शक्तिहीन कर अपनी अधीनता में ले लिया और यहाँ की जनता को दबाये रखने का कार्य इन्हीं राजाओं को सौंप दिया । राजस्थानी जनता की शक्ति पर इन राजाओं की सहायता से कावू पाने के लिये अंग्रेज शासको ने राजस्थान के रजवाडी घेरो को सुदृढ कर दिया । जैसा कि दूसरे अध्याय में सूचित किया गया है, अंग्रेज-शासको के लिये बाहरी अफसरो और नौकर वर्गों द्वारा राजस्थानियो की वीरता के मूल स्रोत राजस्थानी भाषा को कुचलना अब बहुत सरल हो गया ।

राजस्थान में प्रेस, प्रकाशन, लेखन और भाषण सम्बन्धी स्वतन्त्रता का आमूल अपहरण कर लिया गया । इससे राजस्थानी जनता अपने विचार समुचित रूप में नहीं व्यक्त कर सकी और अपने दुख-दर्दों के निवारण में सर्वथा असमर्थ रही । राजस्थानी जनता राजस्थानी साहित्य के लाभ में वंचित हो कर भटकने लगी । विज्ञान के युग में भी राजस्थानी वीरता का साहित्य, जिममें भारतीय स्वाधीनता के अकुर पल्लवित हो चुके थे, कुम्हलाने लगा और न केवल राजस्थान की जनता इसके लाभ में वंचित रही, वरन् अन्य लोगो को भी इसका समुचित परिचय नहीं मिल सका ।

अंग्रेज शासकों ने राजस्थानियों के शिक्षण में राजस्थानी भाषा और साहित्य को सर्वथा बहिष्कृत कर दिया। राजस्थानियों के लिये विशेष प्रकार की पाठ्य-पुस्तकों, बाहरी परीक्षाओं, शिक्षकों और शिक्षा-संचालकों की व्यवस्था की गई। इस प्रकार मातृभाषा राजस्थानी की अवज्ञा से राजस्थानियों को शिक्षण-क्षेत्र में पीछे रह जाना पड़ा, साथ ही राजस्थानी भाषा का समुचित रूप में विकास भी नहीं हो सका।

(ग) जीवन-मरण का प्रश्न ?

सुप्रसिद्ध 'राजस्थानी इतिहास' की आज एक कहानी मात्र रह गई है, सुसम्पन्न 'राजस्थानी साहित्य' आज के वैज्ञानिक एवं स्वतन्त्रता के युग में भी पुरानी षोडशियों के रूप में सड़ता हुआ या मौखिक रूप में नष्ट होता जा रहा है, उत्कृष्ट भारतीय भावनाओं की प्रतीक 'राजस्थानी मस्कृति' आज पिछड़ी हुई बताई जाती है, सम्बन्धित क्षेत्र में सम्मान्य 'राजस्थानी कला' आज अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रही है और यह मर हो रहा है — भारतीय आर्य भाषाओं में अपना प्रमुख स्थान रखने वाली 'राजस्थानी' को राजकीय एवं शैक्षिक क्षेत्रों से सर्वथा उपेक्षित कर देने से।

सभी शिक्षा-शास्त्रियों और विद्वानों ने शिक्षण के लिये 'मातृभाषा' के महत्त्व को पूर्णरूपेण स्वीकार किया है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति करने के लिये मातृभाषा का मूलाधार सर्वथा अपेक्षित है। मातृभाषा की नहायता से कई भारतीय प्रान्त आज उन्नति की ओर अग्रसर हो रहे हैं, किन्तु राजस्थान की शिक्षा-के क्षेत्र में जैसी पिछड़ी हुई स्थिति वर्षों पूर्व थी, आज भी उसमें कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ है।^१

"जब मिडिल पास हिन्दी जानने वालों के लिये भी हम नहीं कह सकते कि उनका साहित्य में प्रवेश हो गया है और www.poojateachers.com उन्हें आगे खींच ले जायेगी, तो ठोक-पीट कर हिन्दी को दो-एक पुस्तकों

पढा देने मात्र से कैसे आशा कर सकते हैं कि हमारे बहुत से हिन्दी मिडलचियो की तरह ये वयस्क नव-साक्षर भी कुछ समय बाद निरक्षर-से नहीं हो जावेंगे । हमें शिक्षा-प्रचार का ढोल बजाने का प्रयत्न छोड़ कर वस्तुस्थिति को देखना चाहिये और जिसमें जल्दी, से जल्दी अधिक से अधिक सख्या में शिक्षा ठोस रूप से फैल कर अपने लिये घर बनाये, ऐसे रास्तो को पकडना ह । इसके लिये सबसे पहिले इस बात की आवश्यकता है कि हर एक बच्चे या वयस्क को उसकी अपनी मातृभाषा द्वारा साक्षर या शिक्षित बनाया जाय ।”

महा पण्डित श्रद्धेय राहुल साकृत्यायन ने हाल ही में राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर को दिये गये अपने कुलपति-सन्देश में उक्त विचार प्रकट किये हैं । इसी से मिलते हुए विचार अन्य प्रमुख शिक्षा-शास्त्रियो और विद्वानो के हैं । किन्तु हमारे राजस्थान, मध्यभारत-मालवा और अजमेर आदि की सरकारें तथा शिक्षण-संस्थाएँ अभी तक घानी के बेलो की तरह, ब्रिटिश-पराधीनता काल में लार्ड मेकाले द्वारा निश्चित घेरे में ही चक्कर काट रही हैं । इनको न तो मातृभाषा राजस्थानी के महत्त्व का ज्ञान है और न इनमें प्रगतिशील दृष्टिकोण को अपनाने का प्रयत्न ही दिखाई देता है ।

भारतीय स्वाधीनता के पश्चात् यह कैसे सहन किया जा सकता है कि हमारे बालक और प्रौढ पर्याप्त परिश्रम करने पर भी यथोचित ज्ञान नहीं प्राप्त कर सके तथा जनता की कमाई का करोड़ों रूपया प्रति वर्ष बर्बाद हो जावे ।

कुछ वर्ष पूर्व मेवाड के सुप्रसिद्ध सन्त एव साहित्यकार महाराज चतुरसिंहजी, ठि० करजाली ने राजस्थानी को शिक्षा-माध्यम के रूपमें अपनाने के लिये इस प्रकार लिखा था —

“आजकाल आपणे अठे भणावारी असी रीत हैं के पौरी बँद बालकाने पराई बोली भणावणो शरु करे । अणीस् बालकाने घणी अबकाई पडे । सूडारी नाई पड लेवे, पण समझमें नी आवाम् भण-भणने भूलता जावे ।

ईसु बालक धराराय जावे, उमग दव जावे ने आपने नजोगा समझवारो हमेशारे वास्ते स्वभाव पढ जावे । सारा ही देश वाला पे'ली पराई बोलीमे भणावणो खोटे केवे हूँ ने रजवाड़ा सिवाय कठेई पे'ली पराई बोली भणावे पण नी है । यो ही कारण हूँ के रजवाडामें जठे-जठे मदरसा हूँ, वठे-वठे पण भण्या थका मनख नी लाघे है ।”

इस प्रकार यदि हम राजस्थानी भाषा-भाषी जनता को शिक्षा के क्षेत्र में उन्नत करना चाहते हैं, शिक्षा पर खर्च होने वाली रकम और शक्ति का पूरा लाभ प्राप्त करना चाहते हैं, कोमलमति बालक-बालिकाओं एव प्रौढों की माध्यम-सम्बन्धी कठिनाइयों को दूर करना चाहते हैं, जनता की अभिव्यजना शक्ति को बनाये रख कर प्रांतीय उत्कृष्ट साहित्य और सस्कृति का समुचित लाभ प्राप्त करना चाहते हैं तथा सरकार एव शिक्षितों और जनता के बीच पूर्ण सहयोग एव समन्वय स्थापित करना चाहते हैं तो कम से कम माध्यमिक और प्रौढ-शिक्षण में और जहाँ तक समभव हो राजकीय कार्यों तथा सार्वजनिक सम्पर्क के लिये 'मातृभाषा राजस्थानी' को अपनाना ही पड़ेगा ।

जनता की अपनी मातृभाषा की स्वतन्त्रता और मान्यता के बिना जनता की स्वतन्त्रता और मान्यता असम्भव है । राजस्थान की जनता के अपने घर में अपने राज के लिये 'राजस्थानी भाषा का राज' होना चाहिये । राजस्थानी भाषा की मान्यता के बिना राजस्थानियों के आर्थिक तथा सामाजिक और राजनैतिक विकास के मार्ग सर्वथा अवरुद्ध है, क्योंकि

१—आजकल हमारे यहाँ पढ़ाने की ऐसी रीति है कि प्रथम ही बालकों को दूसरों की (बाहर की) बोली पढ़ाना प्रारम्भ करते हैं । इससे बालको को बहुत कठिनाई पड़ती है । तोते की तरह पढ़ लेते हैं, किन्तु समझ में नहीं आने से पढ़-पढ़ कर भूलने जाते हैं । इससे बालक धरारा जाते हैं, उमग दव जाती है और अपने आपको ही न समझने का हमेशा के लिये स्वभाव पड़ जाता है । सारे ही देश वाले प्रारम्भ में दूसरों की बोली में पढ़ने को बुरा कहते हैं और रजवाड़ों के सिवाय कहीं पहिले अन्य बोली पढ़ाने भी नहीं है । यही कारण है कि रजवाड़ों में जहाँ जहाँ पाठशालाएँ हैं वहाँ वहाँ भी पढ़े हुए व्यक्ति नहीं मिलते हैं—“बालकारी पोधी” ।

इसके बिना राजस्थान में शिक्षा एवं अन्य प्रगति के माधन सार्वजनिक नहीं हो सकते । राजस्थानी भाषा की अमान्यता से आज राजस्थानियों को अपने घर में ही अपनी रोटी-रोजी के अधिकार से वंचित रहना पड़ता है, साथ ही राजस्थानियों को अपने अभाव-अभियोग प्रकट करने और उनके निराकरण करने में भी असमर्थ रहना पड़ता है । ऐसी अवस्था में राजस्थानी भाषा की मान्यता का प्रश्न दो करोड़ भारतीय जनता के जीवन-मरण का प्रश्न बन गया है ।

पांचवां अध्याय

विरोधियों की ढलीले

भारतीय स्वाधीनता के साथ तुरन्त ही जन-भाषा राजस्थानी को सम्बन्धित क्षेत्रों में मान्यता प्राप्त हो जाती, किन्तु कुछ भ्रान्तियों और स्थिरस्वार्थियों की जन-विरोधी प्रवृत्तियों के कारण ऐसा नहीं हो सका। प्रान्त-विरोधियों के कुचक्रों से भारतीय मविधान भाग १७, अनुच्छेद ३४४ एव अष्टम अनुसूचि के अन्तर्गत भी प्रान्तीय भाषा राजस्थानी को मान्यता नहीं दी गई। इन कारणों से राजस्थानी आन्दोलन को नये रूप में प्रारम्भ करना आवश्यक हुआ है।

(क) स्टैंडर्ड राजस्थानी

अग्नेज शासको ने अपनी शिक्षा-नीति द्वारा राजस्थानी विभागों में राग-द्वेष वढा कर राजस्थान की एकता को नष्ट करने का और नव शिक्षित व्यक्तियों को शेष जनता से अलग कर अपना साधन बनाने का प्रयत्न किया था। किन्तु राजस्थानी जनता अपनी एकता को बनाये रही। राजस्थानी जनता ने रजवाडी दीवारों की विशेष चिन्ता नहीं की और आपसी सामाजिक एव सांस्कृतिक सम्बन्ध बरबाद बनाए रखे। राजनैतिक दृष्टि से मालवा राजस्थान से अलग कर दिया गया था, किन्तु दोनों क्षेत्रों की जनता अपने को एक मानती हुई सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवहारों से बँधी रही है। अग्नेज शासको ने मेवाड, मारवाड, हाडौती, मालवा, बूँडाड और अजमेर-मेरवाडा आदि विभिन्न राजस्थानी भागों को अलग रखने का पूरा प्रयत्न किया। किन्तु इन भागों में भाषा, खान-पान, पहनाव और विचार-परम्परा की एकता बरबाद नहीं हुई, जिनके

आधार पर भारतीय स्वाधीनता के उपरान्त राजस्थान के एकीकरण का कार्य प्रारम्भ हुआ है ।

अंग्रेजी शिक्षा का कुप्रभाव कुछ लोगों के मस्तिष्क में कार्य कर रहा है और वे अब भी राजस्थान की एकता को मानने के लिये तैयार नहीं हैं । ऐसे लोग उन स्वार्थियों के पजे मजबूत बनाए हुए हैं, जिनके स्वार्थ राजस्थान के टुकड़े-टुकड़े में बँटे हुए रहने से पूरे होते रहे हैं । “वारा कोसा बोली बदले” का सिद्धान्त सभी भाषाओं पर लागू होता है, उसी प्रकार राजस्थानी पर भी । राजस्थानी भाषा में मारवाड़ी, मेवाड़ी, मालवी, वागडी, ढूँढाडी और हाडौती आदि बोलिया हैं, किन्तु ये एक दूसरी से इतनी भिन्न नहीं हैं कि आपस में समझी न जा सकें । जिस प्रकार राजस्थान के विभिन्न भागों में खान-पान, आचार-व्यवहार, वेष-भूषा और विचार-परम्परा में एकता है, उसी प्रकार राजस्थानी बोलियों में भी एकता है । इसी एकता के आधार पर राजस्थान के एकीकरण का कार्य प्रारम्भ किया गया है । राजस्थान को पुनः छिन्न-भिन्न कर स्थिरता पूर्वक अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाले व्यक्ति ही राजस्थानी बोलियों में अनेकता की बात करते हैं ।

जहाँ तक राजस्थानी भाषा के स्वरूप-निर्माण का प्रश्न है, वह तो अधिकांश में हल हो चुका है । अन्य भाषाओं से भिन्नता रखने, विस्तार-क्षेत्र, प्राचीन परंपरा, निर्मित साहित्य एवं सम्बन्धित जन-संख्या की दृष्टि से ‘हैं’ और ‘छैं’ में से ‘हैं’, ‘जाऊँला’, ‘जाऊँगा’ और ‘जास्युं’ से सवधित ‘ला’, ‘गा’ और ‘स्युं’ में ‘ला’ से सम्बन्धित रूपों को तथा ‘री’ और ‘की’ विभक्तियों में ‘री’ से सम्बन्धित प्रयोगों को राजस्थान के सभी भागों के साहित्यकारों द्वारा मान्य किया जा चुका है । इसी ‘स्टैण्डर्ड’ रूप में

← इन प्रयोगों की भिन्नता के अतिरिक्त राजस्थानी बोलियों में मुख्यतः एक ही अर्थ को प्रकट करने वाले शब्दों की भिन्नता है।
अभिन्नता वारनव में किसी भाषा की सम्पन्नता ही घोतक है । और इनका प्रयोग शब्दा-
नुसार किया जा सकता है ।

अधिकांश राजस्थानी साहित्यकारों ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कर राजस्थानी एकता को प्रतिष्ठित किया है और इसके उत्कर्ष को सम्बोधित किया है। जैसा कि प्रारम्भ में बताया गया है कि राजस्थान की अपनी विचार परम्परा, साहित्य-शक्ति और सांस्कृतिक सम्पन्नता है, इस दृष्टि से बंगाल, उत्कल और महाराष्ट्र आदि की नाति राजस्थान भी एक भारतीय इकाई में वद्ध है। वास्तव में बंगाल, उत्कल और महाराष्ट्र आदि प्रान्तों की भाषावैज्ञानिक स्थिति से राजस्थान की मूल स्थिति भिन्न नहीं है। राजस्थान की स्थिति में इस दृष्टि से कोई अन्तर करना राजस्थान के साथ नवैया अन्याय करना है।

(ख) राष्ट्रभाषा की स्थिति

जहाँ तक हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करने का प्रश्न है, राजस्थान ने अपनी राष्ट्रीय भक्ति के कारण इस पर वैधानिक छाप लगाने के पूर्व ही स्वीकार कर लिया है। जिस प्रकार गुजरात, बंगाल और महाराष्ट्र आदि में राष्ट्रभाषा को स्वीकार किया गया है, राजस्थान में भी किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

हमारी राष्ट्रभाषा का स्वरूप विकास की ओर अप्रसर हो रहा है। राष्ट्रभाषा में न केवल बंगाली, पंजाबी, राजस्थानी, सिंधी आदि उत्तर-भारतीय भाषाओं की शक्ति सम्मिलित हो रही है वरन् तामिल, तेलगू, कन्नड और मलयालम् आदि दक्षिण भारत की द्रविड भाषाओं की शक्ति भी मिलने जा रही है। सभी भारतीय भाषाओं की शब्द-शक्ति से, सभी भारतीय भाषाओं की साहित्यिक सम्पन्नता से, सभी भारतीय भाषा-भाषियों की विचार-परम्परा और मान्यता की शक्ति से हमारे अखिल हिन्द की राष्ट्रभाषा 'हिन्दी' सम्पन्न होने वाली है। 'हिन्दी-बोली' के 'हिन्दीकरण' का कार्य कुछ वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था, वह अब तीव्र गति से बढ़ने वाला है।

ऐसी अवस्था में राष्ट्रभाषा से हम राजस्थान की प्रान्तीय और मातृभाषा का कार्य किस प्रकार चला सकेंगे ? यह विचारणीय प्रश्न है ।

खड़ी बोली, जिसका प्रयोग राजस्थान में 'फारसी' छाटणो' कहा जाता है, गुजरात, बगाल, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों की तरह राजस्थान में, मुख्यतः शहरों के शिक्षित व्यक्तियों में समझी अवश्य जाती है । किन्तु जनता के सर्वांगीण विकास के लिये शिक्षण एवं प्रान्तीय कार्यों में प्रयुक्त होने वाली भाषा का साधारणतया समझा जाना ही पर्याप्त नहीं है । वर्तमान काल में हमारी जनता केवल सुनना ही नहीं चाहती, अपनी बात कहना भी चाहती है । इस प्रकार प्रान्तीय और मातृभाषा का स्थान कोई भी दूसरी भाषा नहीं ले सकती । जहाँ तक शहरों के कुछ मैकाले-पद्धति से शिक्षित व्यक्तियों और उनके सकीर्ण दायरे का प्रश्न है, उनका कार्य तो हिन्दी ही क्यों, अंग्रेजी से भी चल सकता है, जैसा कि अधिकांश में चलता भी है ।

कुछ लोग हिन्दी के नाम पर स्वार्थपूर्ति की दृष्टि से एक मोर्चा खड़ा करना चाहते हैं, हिन्दी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के उपरान्त भी राजस्थानी जनता की उन्नति की उपेक्षा करते हुए राजस्थान को अपने साथ घसीटना चाहते हैं । स्पष्ट है कि राजस्थान भाग है तो सारे भारतवर्ष का, किसी प्रान्त विशेष का नहीं । इसलिये प्रान्त विशेष के स्वार्थियों से मिल कर शेष भारत से मोर्चा लेना राजस्थान की प्रवृत्ति में कदापि नहीं हो सकता ।

सैकड़ों वर्षों के मुसलमानी शासन के प्रभाव से उर्दू भारत की अन्त-प्रान्तीय भाषा स्वाभाविक रूप से बन गई थी । अंग्रेजी शासन-काल में उर्दू को नागरी लिपि में भी प्रकाशित किया गया तो कुछ लोगों ने इसी को हिन्दी के रूप में प्रचारित करना प्रारम्भ किया । यह अंग्रेज शासकों की कृत्नीति का ही परिणाम हुआ कि कुछ हिन्दू अपनी धार्मिक भाषा सस्कृत और अपनी मातृभाषाओं का ध्यान छोड़ नागरी में लिखित उर्दू

और मान्यता का प्रश्न ?]

के लिये भी लड़ने लगे । स्वार्थी तत्त्वो ने जनता पर हावी होने के लिये 'हिन्दी-हिन्दु-हिन्दुस्तान' का नारा बुलन्द क्रिष्ण शर्मा हिन्दी के वहाने जनता को धोखे में डालना प्रारभ किया, जिसका दु खद परिणाम भीषण साम्प्रदायिक सघर्ष हमारे सामने उपस्थित हुआ । यह वर्ग आज भी क्रियाशील है और राष्ट्र-हित में इसका अन्त किया ही जाना चाहिये । उर्दू जवान को नागरी लिपि में लिखने से और उसमें थोड़े-बहुत सस्कृत शब्दो को डालने से ही किसी को 'हिन्दी' नही माना जा सकता । यदि यही हिन्दी होती तो हमारे मीराँ, सूर, तुलसी, विद्यापति, नरसी आदि कवि भी अन्य मुसलमान विदेशी कवियो के साथ इसी रूप को अपनाते । किन्तु स्पष्ट है कि इस रूप को हिन्दी तब किसी ने नही माना । उत्तर-प्रदेश में मुसलमान शासकों का एव उनकी भाषा 'उर्दू' का सर्वाधिक प्रभाव रहा है, इसलिये नागरीमें लिखित 'उर्दू' को हिन्दी मानने का आग्रह भी मुख्यत वही रहा है ।

हमारी पराधीनता की प्रतीक होते हुए भी हमने नागरी में लिखित उर्दू को सस्कृत शब्दो से युक्त कर इसीलिये राष्ट्रभाषा स्वीकार किया है कि भारत में मुसलमानो के सुदीर्घ शासन-प्रभाव के कारण इसका अन्तर्प्रान्तीय प्रचलन हो गया है । इस उर्दू को अब राष्ट्रभाषाक्षेत्र से भी आगे बढ़ा कर राजस्थान में विगत एक हजार वर्षों की सुपरम्पराओ को तोड़ना तथा राजस्थानी भाषा-भाषी जनता को अपनी प्रान्तीय और मातृभाषा के लाभ से वंचित करना कहा तक उचित कहा जा सकता है ? फिर नवीन अन्ति और नवीन जागृति के उप काल में प्रवुद्ध होते हुए इतिहास प्रसिद्ध राजस्थानी जन-बल का सामना करते हुए क्या कभी ऐसा स्वाई रूप में किया जा सकेगा ?

(ग) राजस्थान-मालवा की साहित्यिक आशा www.teachers.com

विगत एक हजार वर्षों के साहित्यिक इतिहास से स्पष्ट है कि राज-

जनता तक पहुँचाया है। खड़ीबोली का प्रयोग यहाँ केवल मुसलमान पात्रों के लिये हुआ है। कुतबदीन साहजादेरी बात, दिल्लीरी बात आदि राजस्थानी प्रभावित खड़ीबोली साहित्य से स्पष्ट हो जाता है कि खड़ीबोली मुसलमानों से सम्बन्धित है। राजस्थानी-मालवी जनता आज भी खड़ीबोली को मुसलमानों से सम्बन्धित मानती है, इसलिये खड़ीबोली के व्यवहार को 'फारसी छाटणो' कहा जाता है। राजस्थानी जनता में खड़ीबोली का व्यवहार भी बहुधा मुसलमानों अथवा बाहरी लोगों द्वारा होता है।

यही कारण है कि नव शिक्षित साहित्यकार भी जनता से अपना सम्पर्क स्थापित करने के लिये और अपनी अभिव्यक्ति के लिये मुख्यतः राजस्थानी भाषा का व्यवहार करते हैं। राजस्थानी भाषा के साहित्यकारों को अत्यधिक लोकप्रियता भी प्राप्त हुई है। साथ ही नवीन राजस्थानी की कई रचनाएँ परम उत्कृष्ट एवं भारतीय साहित्य के लिये अर्पण देन सिद्ध हुई हैं।

राजस्थान-मालवा के विभिन्न राजनैतिक नेताओं द्वारा भी जनसम्पर्क के लिये राजस्थानी भाषा को ही अपनाया गया है। विविध राष्ट्रीय आन्दोलनों में भी राजस्थानी साहित्यकारों और उनकी रचनाओं से पूरा सहयोग प्राप्त हुआ है। यहाँ का सम्पूर्ण 'लोक साहित्य' जो जनता का वास्तविक साहित्य है, राजस्थानी भाषा में ही मिलता है।

गुजरात, बंगाल, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों की भाँति राजस्थान-मालवा से भी कुछ खड़ीबोली की पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें प्रकाशित होती रहती हैं, किन्तु इनकी पहुँच बहुत ही सीमित रहती है।

इस प्रकार राजस्थान-मालवा में साहित्यिक दृष्टि से 'जन-भाषा' राजस्थानी ही नमान्य हुई है।

(घ) अखिल भारतीय स्थिति.

www.rajteachers.com

प्रवासी राजस्थानियों के साथ राजस्थानी भाषा भारत के कोने-कोने में पहुँची हुई है। जनसंख्या की दृष्टि में राजस्थानी का स्थान सप्ताह में

२७वाँ और भारत में ७वाँ है। राजनैतिक दृष्टि से और अपनी अखिल भारतीय महत्ता के कारण राजस्थानी भारत की तीन-चार प्रमुख भाषाओं में मानी गई है। जैसे —

अगर-मगर के सोलह आने, इकडम-तिकडम चार ।

अट्ट-कट्ट के अठ हीज आने, सूं-नां पइसा चार ॥

अर्थात् मुगल-शासन-काल के अन्तिम दिनों में जब मराठों का जोर बहुत बढ गया था तो 'अगर-मगर' की शाही भाषा उर्दू को सोलह आना, 'इकडम-तिकडम' की मराठी को चारह आना, 'अट्ट-कट्ट' की राजस्थानी को आठ आना और 'सु-सा' की गुजराती को केवल चार पैसे स्थान मिला था।

कालान्तर में जब अंग्रेजों का प्रभुत्व बढ गया तो भारतीय भाषा-विषयक स्थिति इस प्रकार हो गई —

'हियर-देयर' सोलह आना, इधर-उधर चार ।

इकडे-तिकडे आठ आना, अठे-बठे चार ॥

अर्थात् 'हियर-देयर' की अंग्रेजी को सोलह आना, उधर-उधर की उर्दू (जो अब मुगल-साम्राज्य के पतन के कारण बढ गई थी), को चारह आना, 'इकडे-तिकडे' की मराठी को आठ आना और 'अठे-बठे' की राजस्थानी को चार आना स्थान प्राप्त हुआ।

अब भारत से अंग्रेजों का आविपत्य उठ जाने से 'हियर-देयर' की अंग्रेजी के लिये सोलह आने नहीं रहे। 'अगर-मगर' की इस्लामी भाषा और 'इकडे-तिकडे' की मराठी का अखिल भारतीय क्षेत्र भी मुसलमान और मराठा शासकों के साम्राज्य-स्वप्नों के साथ समाप्त हो गया है।

१—इन पद्यों की नया शैली और अर्थ से स्पष्ट है कि ये पद्य अखिल भारतीय भाषा विषयक स्थिति को प्रकट करते हैं। राजस्थानी भाषा को भी उचित स्थान नहीं रखा है। श्रीचन्द्रदत्त पांडे ने अपनी अज्ञानकारी से उक्त प्रथम पद्य को केवल राजस्थान में ही प्रचलित मान कर 'राजस्थानी के लिये बहुत निम्नश्रेणी के और

अब प्रत्येक राजस्थानी का एव प्रत्येक स्वाधीनता-प्रेमी भारतीय का परम कर्तव्य हो जाता है कि भारतीय स्वाधीनता-संग्राम की मूल प्रेरक जन भाषा राजस्थानी को प्राप्त स्वाधीनता के संरक्षण एव पोषण के लिये पुनः भारतीय भाषा-पीठ पर कम से कम 'राजस्थान-भारती' के रूप में प्रतिष्ठित करें। हमारी परवशता से सतप्त हो कर यह राजस्थानी सरस्वती 'चार आना' रह गई है, इसलिये अब स्वाधीनता के उप काल में इसको प्रफुल्ल करना हमारा प्रथम लक्ष्य होना चाहिये।

(ड) लिपि और सहायक पुस्तको आदि का प्रश्न ?

नागरी लिपि के लिये तीसरे अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है कि यह लिपि राजस्थानी भाषा की अपनी लिपि है। नागरी लिपि का विकसित मूल रूप राजस्थानी लेखन में प्रचलित है। मराठी नागरी लिपि में व्यक्त की जाती है, किन्तु इससे उसके स्वतन्त्र प्रान्तीय अस्तित्व पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पडा है।

पाठ्य-पुस्तिकाओं, सहायक पुस्तको आदि की राजस्थानी में कमी है, यह दलील भी कुछ विरोधियों द्वारा दी जाती है। किन्तु इसमें कोई तथ्य नहीं है, क्योंकि ऐसी पुस्तको का निर्माण और प्रकाशन आवश्यकता-नुसार ही होता है।

कुछ व्यक्ति राजस्थानी को भाषा ही नहीं मानते। राजस्थान के अन्न-जल एव अर्थ से पलने वाले एक उत्तरप्रदेशी ने "राजस्थानी भाषा के प्रश्न से अधिक चर्चल" हो कर एक पुस्तक ही छपवा दी है और उसमें लिखा गया है कि "बोलते पशु भी हैं, परन्तु वे कहते या भापते नहीं हैं। इसलिये उनकी बोली 'भाषा' नहीं बनती ••• • • मनुष्य-समाज में

भी बोली और भाषा का यही भेद अनुपात-क्रम से देखने में आता है”। इनके मत से राजस्थानी मानो सभी पशु ही है । हृदय-मोहन जोदड़ो-काल की प्राचीनतम भारतीय सस्कृति से सम्बन्धित गौरवशाली राजस्थानी जनता का इनकी दृष्टि में कोई अस्तित्व ही नहीं है । राजस्थानी भाषा की व्याकरण, साहित्य-सम्पन्नता, अभिव्यजना-शक्ति आदि के विषय में अन्यत्र यथा स्थान लिख दिया गया है । राजस्थानी भाषा के विरोधियों की नभी दलीलो पर यथातथ्य निरूपण करने के पश्चात् अन्त में इतना ही लिखना पर्याप्त है कि जन-भाषा राजस्थानी का विरोध करना राजस्थानी जनता की उन्नति का विरोध करना है और अब यह सर्वथा असह्य है । भारतीय सविधान में विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं के सरक्षण की ही नहीं, विकास की भी व्यवस्था की गई है । ऐसी अवस्था में राजस्थानी भाषा की अवहेलना करना राजस्थानी जनता के विकास को अवरुद्ध कर अखिल भारतीय उत्कर्ष में व्याघात पहुँचाना है । साथ ही घोर अराष्ट्रीयता भी है ।

छठा अध्याय

राजस्थानी भाषा के लिये हमारा कर्तव्य

समस्त राजस्थानियों एवं राजस्थान मालवा, अजमेर, आबू आदि राजस्थानी भाषा-भाषी क्षेत्रों की सर्वतोमुखी शैक्षिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नति का महत्त्वपूर्ण प्रश्न 'राजस्थानी भाषा' के विकास एवं मान्यता के साथ जुड़ा हुआ है। इसलिये अविलम्ब ही इस विषय में ठोस कार्य करने की आवश्यकता है।

(क) भारतीय संसद

भारतीय संसद का कर्तव्य है कि 'राजस्थानी' को प्रान्तीय एवं राज्य-भाषा की भाँति मान्यता प्रदान कर दो करोड़ भारतीय जनता की सर्वांगीण उन्नति का मार्ग प्रशस्त करे। राजस्थानी जनता के साथ इस सम्बन्ध में सर्वथा अन्याय हुआ है और इसके निराकरण के लिये संसद-सदस्यों को अविलम्ब ही कटिबद्ध हो जाना चाहिये।

(ख) केन्द्रीय सरकार

वर्तमान में राजस्थानी भाषा-भाषी 'व' और 'स' राज्यों के प्रति केन्द्रीय सरकार का विशेष उत्तरदायित्व है। इसलिये 'राजस्थानी भाषा' को वैधानिक मान्यता दिलवाने और इसकी उन्नति के लिये केन्द्रीय सरकार को विशेष व्यवस्था करनी-करवानी चाहिये। रेडियो और अन्य सार्वजनिक संपर्क के साधनों में 'राजस्थानी भाषा' के यथोचित प्रयोग की तुरन्त व्यवस्था की जानी चाहिये। साथ ही समस्त राजस्थानी भाषा-भाषी क्षेत्रों को एक प्रान्त के रूप में संगठित करने का कार्य भी शीघ्र ही पूरा किया जाना चाहिये।

(ग) सम्बन्धित राज्य-सरकारें

राजस्थान, अजमेर, मध्यभारत-मालवा और आबू आदि राजस्थानी भाषा-भाषी क्षेत्रों से सम्बन्धित सरकारों तथा विधान सभाई सदस्यों (एसेम्बली मेम्बरो) को चाहिये कि 'जन भाषा राजस्थानी' को प्रान्तीय और राज्य भाषा के रूप में स्वीकार करें। साथ ही शैक्षिक और सार्वजनिक कार्यों में इसका समुचित प्रयोग करें एवं इसकी उन्नति की पूरी-पूरी व्यवस्था करें। कोई भी सरकार अपनी जनता की मातृभाषा को पूर्ण मान्यता देकर ही जनता का विश्वास और सहयोग प्राप्त कर सकती है, यह सम्बन्धित सरकारों, मन्त्रियों और अधिकारियों को सदैव ध्यान में रखना चाहिये।

(घ) जन-नायक और हितचिन्तक

सम्बन्धित जन-नायकों एवं हितचिन्तकों का परम कर्तव्य है कि वे अब 'राजस्थानी भाषा' की मान्यता और उन्नति के लिये अविलम्ब ही क्रियाशील बनें। हमारे कई नेताओं ने 'राजस्थानी भाषा' के लिये महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं और आज भी वे जनता में प्रचार-प्रकाशन के लिये 'राजस्थानी भाषा' का ही प्रयोग करते हैं। अब उनको 'राजस्थानी भाषा' की मान्यता के लिये विशेष प्रयत्नशील होना चाहिये तथा इसकी सहायता से अपने कार्यों को सगठित एवं ठोस बनाना चाहिये।

(ङ) हमारे साहित्यकार

राजस्थानी भाषा के लिये सम्बन्धित साहित्यकारों का विशेष उत्तर-दायित्व है। अतीत में हमारे साहित्यकारों ने राजस्थानी भाषा को अपना कर परम उत्कृष्ट साहित्य का निर्माण किया है और आज भी कई साहित्यकार इसी आदर्श को अपनाते हुए अपनी कृतियों में पूर्ण रूपेण सफल हो रहे हैं। कोई भी साहित्यकार अपनी जनता का और अपने

युग का हो कर ही जन-जन का और युग-युग का हो सकता है । साहित्यकार जनता का प्रतिनिधि होता है, इसलिये उसे 'जन भाषा' से मुह मोड कर अपने पैरो आप कुल्हाडी नही मारनी चाहिये ।

समस्त राजस्थान, मध्यभारत-मालवा आदि के साहित्यकारो का परम कर्तव्य है कि वे जनभाषा राजस्थानी मे काव्य, कहानी, नाटक, उपन्यास, निबन्ध और समालोचना सम्बन्धी साहित्य की सृष्टि करे । साथ ही राजस्थानी रचनाओ के अनुवाद अन्य प्रमुख भाषाओ मे और अन्य भाषाओ की उत्कृष्ट कृतियों के अनुवाद राजस्थानी में प्रस्तुत करें ।

(च) विद्वान् विचारक आदि

विद्वानो का कर्तव्य है कि राजस्थानी भाषा का विविध दृष्टिकोण से पूरा-पूरा अध्ययन करें और राजस्थानी साहित्य की खोज, संग्रह, सम्पादन एव प्रकाशन का कार्य शीघ्र ही पूरा करें । इसी प्रकार हमारे विचारको, वैज्ञानिको और इतिहासकारो को चाहिये कि राजस्थानी जनता के लिये सभी प्रकार की पाठ्य-सामग्री 'राजस्थानी भाषा' में प्रस्तुत करें ।

(छ) पत्रकार

राजस्थानी जनता से सम्बन्धित पत्रकारो ने अब तक 'राजस्थानी भाषा' की उपेक्षा की है और इसका दुष्परिणाम भी पत्रो को उठाना पडा है । जन-भाषा राजस्थानी की अवज्ञा से राजस्थानी जनता तक इन पत्रो की पहुँच नही हो सकती है और ग्राहको के अभाव में इनका अन्त अस्मय में ही हो जाता है । राजस्थानी जनता से सम्बन्धित पत्रो के अधिकाधिक प्रचार एव स्थायित्व की दृष्टि से राजस्थानी भाषा का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है । प्रारम्भ मे हमारे पत्र कुछ पृष्ठ ही राजस्थानी भाषा मे प्रकाशित कर इस विषय मे प्रगति कर सकते है । प्रसन्नता है कि हमारे कुछ पत्रकारो ने इस विषय में सराहनीय कार्य किया है ।

(ज) सम्बन्धित संस्थाएँ

राजस्थानी जनता से सम्बन्धित संस्थाओं एवं उनके सञ्चालकों के लिये उचित है कि अब वे प्रगतिशील दृष्टिकोण को अपना कर जनभाषा राजस्थानी की सहायता से जनोन्नति का सीधा मार्ग ग्रहण करें। जनभाषा को अपना कर ही जन-मेवी संस्थाएँ जनता का सहयोग प्राप्त कर सकती हैं।

(झ) राजस्थानी भाषा की उन्नति के लिये प्रमुख कार्य

संक्षेप में 'राजस्थानी' सम्बन्धी प्रमुख कार्यों की रूपरेखा निम्नलिखित है—

(१)

भारतीय सविधान के अनुच्छेद ३४४ (१) और ३५१ एवं अष्टम अनुसूची में राजस्थानी भाषा को मान्य करना।

(२)

राजस्थान, मध्यभारत-मालवा, अजमेर आदि राजस्थानी भाषा-भाषी क्षेत्रों की सरकारों से 'राजस्थानी' को मान्य करवाना और सार्वजनिक तथा जहाँ तक संभव हो राजकीय कार्यों में 'राजस्थानी' का व्यवहार करवाना।

(३)

मातृभाषा राजस्थानी को समस्त राजस्थानी जनता में प्रारम्भिक शिक्षण, माध्यमिक शिक्षण, प्रौढ शिक्षण आदि के लिये माध्यम रूप में स्वीकार करना।

(४)

समस्त राजस्थानियों और सम्बन्धित संस्थाओं के लिये व्यापारिक एवं आपसी कार्यों के लिये राजस्थानी के व्यवहार को अधिकाधिक बढ़ाना।

४—श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया ने इधर कुछ ग्रंथों से राजस्थान की बोलियों को एक प्रान्तीय भाषा का रूप देकर राजस्थान प्रान्त की भाषा के आन्दोलन को उठाया है। राजस्थानी भाषा का सवाल एकदम राजस्थानी जनता का सवाल है।

—जुनार्दन राय नागर

५—राजस्थानी हमारी मातृभाषा है और मातृभाषा का स्थान शिक्षण-व्यवस्था में बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। मातृभाषा का महत्त्व शिक्षण की दृष्टि से तो अधिक है ही, किन्तु उसके सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनैतिक महत्त्व की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती।

—रानी लक्ष्मीकुमारी चण्डावत

६—मेरा बस चले तो मैं किसी भी राजस्थानी को राजस्थान के कान-काज के लिये राजस्थानी के उपरान्त दूसरी बोली में न बोलने दूँ, न लिखने दूँ अगर हमें राजस्थानी जनता को उठाना चाहते हैं और एक नया जीवित और तेजस्वी राजस्थान देखना चाहते हैं तो यह कार्य करना बहुत जरूरी है।

—हरिभाऊ उपाध्याय

७—राजस्थानी भाषा के उत्थान, अभिवृद्धि एवं प्रचार का एकमात्र उद्देश्य यही है कि राजस्थान में इसे उमी पद की प्राप्ति हो जो गुजरात में गुजराती को और बंगाल में बंगला को प्राप्त है।

—रामदेव चौखानी

८—प्रारम्भिक शिक्षा मातृभाषा राजस्थानी में नहीं होने के कारण मानसिक विकास में अभिवृद्धि होने के बजाय, शिक्षण के साथ इतर भाषा ना बोया, मातृभाषा के साथ हमारी गौरवमयी सस्कृति के विनाश की दुर्भविना भी उत्पन्न करता है।

www.rajteachers.com

९—५० वर्ष पूर्व राजस्थानी का व्याकरण तैयार हो चुका था और इसकी पाठ्य पुस्तकें भी पढ़ाई जानी थी। पर वेद है कि आज के विज्ञान-

शील युग में राजस्थानी लोग इस श्रौर उपेक्षा के साथ सोये पडे हैं । कोई प्रान्त तभी शीघ्रगामिता के साथ उन्नत श्रौर विकसित हो सकता है, जबकि उसका शिक्षण-माध्यम उसकी भाषा हो ।

—पं० नरोत्तमदास स्वामी

१०—राजस्थानी को छोड़कर हम बढ नहीं सकते, शिक्षित हो नहीं मकते, जीवित रह नहीं सकते । राजस्थानी की उन्नति का प्रश्न हमारे जीवन-मरण का प्रश्न है ।

—ठा० रामसिंह

११—अगर हमारी राजस्थानी भाषा राजनैतिक क्षेत्र में मार दी गई तो हम राजस्थानी भी मरे तुल्य हो जावेंगे जब तक हम अपनी मातृभाषा राजस्थानी का मान करना न नीखेंगे तब तक हमारा भी कहीं मान होने वाला नहीं है ।

—झुं० जसवन्त सिंह

१२—हम शक्तिशाली होकर देश सेवा करना चाहते हैं तो हमें मातृ-भाषा राजस्थानी की शरण लेनी चाहिये । राजस्थान निर्माण के बाद हमारा यह कर्त्तव्य हो गया है कि हम राजस्थानी भाषा की सेवा करें और इसे प्रान्तीय भाषा का रूप दें ।

—बलवन्त सिंह मेहता

१३—राजस्थान में राजस्थानी भाषा का मान नहीं करने वाले अपने घर का रास्ता लेंगे । नविधान की भाषाम्रो में आज नहीं तो कल अवश्य ही राजस्थानी का नाम लिखा जावेगा । मुझे उस दिन बडी प्रसन्नता होगी, जब मैं देखूंगा कि हमारे यहाँ राजस्थानी भाषा में सभी पुस्तकें पढाई जाती हैं ।

—मयुरादास मायुर

१४—राजस्थान की भाषा अभी तक मरी नहीं है । वह जीवित तो है, पर है नींद में । उसको जगाना जरूरी है और यह काम राजस्थान के सपूतो का ।

—धनश्यामदास बिड़ला

१५—सीमावर्ती प्रान्त की लोहे की दीवार बनाना है तो राजस्थानी भाषा और साहित्य की नींव पर ही उसका निर्माण करना होगा ।

—सत्यदेव विद्यालकार

१६—राजस्थान के कुछ विशिष्ट साहित्यकार प्रान्त के भाषा विषयक प्रश्न को नई युक्तियों और नये जोश के साथ आगे ला रहे हैं “राजस्थानी” का मौजूदा आन्दोलन कोई असफल राजनैतिक नेता नहीं चला रहा है ।

—अचलेश्वर प्रसाद शर्मा

१७—राजस्थान सरकार ने सब कुछ निश्चितताएँ केन्द्र को दी हैं, किन्तु जनता की भाषा राजस्थानी के अभाव को राजतंत्र का राहु समझ कर उसका विकास उसे सबसे पहले करना चाहिये ।

—जगदीश प्रसाद ‘दीपक’

१८—हमारी वाणी करोड़ों की होते हुए भी राज-भाषा नहीं है, मातृभाषा से दूर रहेंगे तो देश, जाति और समाज का पूरा भला नहीं कर सकेंगे तथा सच्चा सुख नहीं पा सकेंगे । सच्चा सुख पाना है तो अपनी वाणी को राज्यभाषा बनाना पड़ेगा ।

—चौधरी कुभाराम शर्मा

१९—इन तथ्यों से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि मेरठ जिले के लोगों की मातृभाषा तथा भारत की राज्यभाषा हिन्दी राजस्थान के विशाल राज्य के निवासियों की मातृभाषा नहीं है । राजस्थान में शिक्षा का प्रतिशत आँसत इस समय नगण्य सा है और हमें राजस्थान के प्रत्येक वातक, स्त्री-पुरुष को शिक्षित करना है ।

—जवाहरलाल जैन

२०—राजस्थानी को प्रान्तीय भाषा के रूप में सरकारी मान्यता प्रदान की जावे. यह राज्य-भाषा भी रह चुकी है. राजस्थानी का साहित्य हर तरह से भरपूर है ।

—कु० देवीसिंह, मण्डाया

२१—यह अनुभव करते हुए मार्मिक वेदना होती है कि राजस्थान के जन-जीवन की सर्वांगीण उन्नति की मूल आधार और प्रमुख साधन हमारी मातृभाषा राजस्थानी का सर्वत्र बहिष्कार किया गया है । . राजस्थानी भाषा की मान्यता के साथ भारत की लगभग दो करोड़ जनता की शैक्षिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक उन्नति का या कहना चाहिये, जीवन-मरण का प्रश्न जुड़ा हुआ है ।

—रैवतदान चारण

२२—दो करोड़ जनता की भाग्य-विडम्बना से आज राजस्थानी भाषा को अन्ध कूप में धक्के देकर गिराया जा रहा है . राजस्थान आज भले ही शकर की तरह गरल के इस कडवे घूंट को आँख मीच कर पी ले पर कल जन-जागरण के डिम-डिम नाद पर उसे ताण्डव भी करने को बाध्य होना पड़ेगा ।

—कन्हैयालाल सेठिया

२३—प्रजातंत्र के प्रवाह को रोकने में कोई समर्थ नहीं हुआ । भाषा क्षेत्र में भी नई श्रान्ति को रोकना चट्टान से टकरानामात्र सिद्ध होगा राजस्थानी इस प्रान्त की जनभाषा है । इसे विकसित करना राजस्थान के-नव निर्माण के लिये अति आवश्यक है ।

—श्रीकारलाल बीहरा

२४—राजस्थान के सांस्कृतिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक एवं राज-नैतिक सहज ऐक्य की जननी, शृंखलावद्ध सागोपाग मुसाहित्य की स्वामिनी, दो करोड़ मानवों की मातृभाषा इस वीर वाणी के बिना हम (शिक्षा) क्षेत्र में, जिसमें कि हमें द्रुतगति से ही नहीं अपितु छलाग लगाकर अन्य प्रान्तों जितनी प्रगति करनी है, अभीष्ट साफल्य स्वप्न में भी नहीं मिल सकेगा ।

—दामोदरलाल मूँवडा

२५—राजस्थानी भाषा के लिये www.panjteach.com मेरा सदा सहयोग रहेगा और मैं सक्रिय काम भी कर रहा हूँ और करूँगा ।

—कुं० चान्दकरण शारदा

२६—जनता जो स्वामी है—टीवो की, पहाड़ों की और खेतों की, उसको अपने साथ लेना है तो राजस्थानी भाषा को ही अपना पड़ेगा । निर्माण की भाषा वह नहीं जो ५ फी सदी की हो । राजस्थान में सर्वोदय के लिये सबकी भाषा को मान्यता देना होगा ।

—मातादीन नगेरिया

२७—मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि राजस्थान में राजस्थानी भाषा के माध्यम से शिक्षा नहीं दी जाती ।

—गोविन्द मातवीय

२८—राजस्थान के विभिन्न प्रदेशों और दूर-दूर फैले जनपदों में परस्पर सलाप-साधन उत्पन्न करने के लिये हमें एकीकृत राजस्थानी भाषा की बड़ी जरूरत है । हमारे मध्य में वह भाषा विद्यमान है, परन्तु आवश्यकता है उसे लोकमानस के अवचेतन से उठाकर जगाने की ।

—श्रीनाथ चतुर्वेदी

२९—राजस्थानी भाषा का पर्याप्त अध्ययन राजस्थान के सर्वतोमुखी विकास के लिये पहिली आवश्यकता है । राज्य की प्राथमिक पाठशालाओं में चौथी कक्षा तक राजस्थानी में शिक्षा देने में साधारणतया कुछ भी आपत्ति नहीं होनी चाहिये ।

—डा० रघुवीर

३०—भारतीय संविधान और राज्य-कार्यों में राजस्थानी भाषा की उपेक्षा करना दो करोड़ राजस्थानियों की उपेक्षा करना है । इनका निराकरण अविलम्ब ही होना चाहिये ।

—भगवतीताल भट्ट

३१—राजस्थानी के प्रति उपेक्षा दिखाई गई है और राजस्थानी को नुजाया गया है, राजस्थान की दो करोड़ जनता उसे सहन करनेवाली नहीं है । वह अपनी ससृष्टि, सभ्यता और परंपरा का इस प्रकार खत नहीं होने देगी ।

www.rajteachers.com

—प्रवीर चंद्र

३२—राजस्थान जैसे महान् प्रान्त की भाषा को मान्यता न देना खलनेवाला विषय है । राजस्थान सरकार और उसकी दो करोड़ जाग्रत जनता के लिये लज्जा का विषय है । सस्ते-महँगे किसी भी मूल्य पर हो राजस्थानी को विधान में और प्रान्त में अपना स्थान ग्रहण करना ही है ।

—सौभाग्य सिंह शेखावत

३३—राजस्थानी भाषा का एक व्यापक स्वरूप है । हमें इसके स्वरूप को विकसित करते हुए भाषा को उपयुक्त स्थान प्राप्त कराने के लिये सबल बनाना है ।

—मेघराज 'मुकुल'

३४—राजस्थानी रुडी रमणा—व्यापक, वरदा वीरत-वयणा, जग गावं गुणगान ।

—वद्रीप्रसाद साकरिया

३५—राजस्थानी भाषा म्हारे,
कालजियेरी कोर

जीवसूँ वाली आ राणी,
जय घोराओ देसडो, र
माँ ! जय राजस्थानी ।

—प्रेमचन्द्र रावल

३६—सगलो जीवण सपतिवासा,
अपणी मातरभाषा आसा ।
वेटा-वेटी दो विसवासा,
वीरों टालो देस-विनासा ॥

दोय कोडरी मातरभाषा,
करणी सगलो ऊँच प्रकासा ।

नाखँ नंगो नीर निस्तारा,
दयो सपूतो ध्याय दिलर्सा ।
www.rajteachers.com

राजस्थानी पुस्तक माला-कार्यालय,

प्रधान कार्यालय-जयपुर (राजस्थान)

श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया की कुछ अन्य पुस्तके —

- १—राजस्थान की रस-धारा
- २—चारण गीत-माला
- ३—राजस्थानी भील-कहावताँ
- ४—राजस्थानी साहित्य का इतिहास
- ५—राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति और विकास
- ६—राजस्थानी लोकगीत
- ७—हिन्दी साहित्य की रूपरेखा
- ८—राजस्थानी काव्य-संग्रह
- ९—मीराँवाई,
- १०—राजस्थानी वार्ता-साहित्य

